प्रकाशक
ख़ज़ानचीराम जैन, अध्यक्ष,
मेहरचंद्र लक्ष्मणदास,
दरियागंज, दिल्ली।

१९५३

मुद्रक
नरेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस,
२०, मॉडल बस्ती,
दिल्ली।

दो शब्द

तुलसीदास जी को कौन ऐसा हिन्दू है जो नहीं जानता। तुलसीदास अपने काल के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कवि थे। हिन्दी-साहित्य में जो स्थान इस कवि को प्राप्त है वह अन्य किसी को नहीं। है तो वैसे सूर भी उसी श्रेणी के, किन्तु तुलसीदास जी रामचरित-मानस के कारण घर-घर में प्रकाशमान हो रहे हैं। हिन्दी-संसार में उनका स्थान सर्वोच्च माना जाता है। क्या स्त्री, क्या पुरुष और क्या बालक—सब की जिह्वा पर तुलसीदास जी का नाम स्थित है। इनकी कविता में जो भाषा-चमत्कार है वह अन्यत्र नहीं मिलता। इनकी भाषा की सरसता अनुपमेय है। भक्ति-प्रधान होने के कारण इनका काव्य प्रत्येक हिन्दू के घर की सम्पत्ति बन गया है। कोई ही ऐसा घराना होगा जहाँ तुलसीरामायण न मिले। कविता इनकी समान प्रवाह से आदि से अन्त तक चलती है। समस्त रचना को पढ़िए अथवा किसी एक अंश को, आपको सर्वत्र पूर्ण रस मिलेगा। तुलसीदास की कविता में आत्मा का स्वच्छ प्रवाह है। कविता में भाव और भाषा दोनों साथ-साथ चलते हैं। उनके गीतों में संसार का प्रमोद खिल रहा है। तुलसीदास जी वस्तुतः हिंदी-साहित्याकाश के सूर्य थे। उन्होंने लगभग बीस पुस्तकें लिखी हैं किन्तु रामचरित-मानस को सर्वोपरि शासन उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका, बरवै रामायण भी बहुत प्रसिद्ध हैं। हमने इस पुस्तक में उपरोक्त रचनाओं में से बड़े परिश्रम से कुछ उपयोगी कवितांश छाँट कर संग्रह किये हैं जिनसे धर्म तथा नीति की ऊँची-नीची भूमियों

तो लक्षित होती ही हैं, कवि की कवित्वशक्ति का भी पूरा-पूरा परिचय प्राप्त होता है। हमारा विश्वास है कि यह संग्रह कवि का अच्छा प्रतिनिधित्व कर रहा है और विद्यार्थी इससे यथेष्ट लाभ ले सकेंगे। हमारा यह भी विश्वास है कि इसमें संगृहीत सभी कविताएँ सर्वथा रसपूर्ण और मार्मिक हैं तथा छात्रों के लिए अधिकाधिक उपयोगी और साहित्यावगाहन की रुचि उत्पन्न करने वाली हैं। बोधगम्य बनाने की दृष्टि से अन्त में कठिन शब्दों और वाक्यांशों का सरल अर्थ और व्याख्यात्मक स्पष्टीकरण भी कर दिया गया है जिससे छात्र इस तुलसी-साहित्य का रसास्वादन करने में क्लिष्टता का अनुभव न कर सकें।

लक्ष्मीचन्द्र खुराणा

तुलसी-रत्नावली

बरवै रामायण

केस-मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥१॥

सम सुवरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय-अंग, सखि! कोमल, कनक कठोर ॥२॥

सियमुख सरदकमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि-दिन यह विगसाइ ॥३॥

चंपक-हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय-हियरे जब कुँभिलाइ ॥४॥

सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत ॥५॥

साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव।
राम नीतिरत, काम कहा यह पाव? ॥६॥

कामरूप सम तुलसी रामसरूप।
को कवि समसरि करै परै भवकूप ॥७॥

चढ़त दसा यह उतरत जात निदान।
कहौं न कबहूँ करकस भौंह कमान ॥८॥

नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन ।
निरखि निसाकर-नृप-मुख भये मलीन ॥६॥

कमठ पीठ धनु सजनी कठिन अँदेस ।
तमकि ताहि ए तोरिहि कहब महेस ॥१०॥

नृप निरास भये निरखत नगर उदास ।
धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास ॥११॥

का घूँघट मुख मूँदहु नबला नारि ?
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥१२॥

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन ।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन ॥१३॥

कोउ कह नरनारायन, हरिहर कोउ ।
कोउ कह विहरत बन मधु मनसिज दोउ ॥१४॥

तुलसी जनि पग धरहु गंग महँ साँच ।
निगानाँग करि नितहिं नचाइहि नाच ॥१५॥

कमल कटकित सजनी, कोमल पाइ ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ ॥१६॥

द्वै भुज कर हरि रघुबर सुंदर वेष ।
एक जीभ कर लछिमन दूसर शेष ॥१७॥

बेद-नाम कहि, अँगुरिन खंडि अकास ।
पठयो सूपनखाहि लखन के पास ॥१८॥

जटा मुकुट कर सर धनु, सग मरीच ।
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच ॥१६॥

कनकसलाक, कला ससि, दीपसिखाउ।
तारा सिय कहँ लछिमन मोहिं बताउ॥२०॥

सीय-बरन सम केतकि अति हिय हारि।
किहेसि भँवर कर हरवा हृदय बिदारि॥२१॥

स्याम गौर दोउ मूरति लछमन राम।
इनतें भइ सित कीरति अति अभिराम॥२२॥

कुजन-पाल गुन-वर्जित, अकुल, अनाथ।
कहहु कृपानिधि राउर कस गुनगाथ॥२३॥

बिरह-आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ॥२४॥

डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम॥२५॥

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ॥२६॥

सरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि।
बिधुहिं जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि॥२७॥

बिविध बाहिनी बिलसति सहित अनंत।
जलधि सरिस को कहै राम भगवंत॥२८॥

तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास।
सब ते अधिक राम जपु तुलसीदास॥२९॥

जान आदि-कवि तुलसी नाम-प्रभाउ।
उलटा जपत कोल ते भये ऋषिराउ॥३०॥

कलसजोनि जिय जानेउ नाम-प्रतापु ।
कौतुक सागर सोखेउ करि जिय जापु ॥३१॥

केहि गिनती महँ ? गिनती जस बनघास ।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥३२॥

एकहि एक सिखावत जपत न आप ।
तुलसी रामप्रेम कर बाधक पाप ॥३३॥

मरत कहत सब सब कहँ 'सुमिरहु राम' ।
तुलसी अब नहिं जपत समुझि परिनाम ॥३४॥

नाम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु ।
जनम जनम रघुनंदन तुलसिहि देहु ॥३५॥

(तुलसी के चार दल, द्वितीय पुस्तक से)

प्रेम की अनन्यता

दोहा

एक भरोसो एक बल एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥१॥

जौं घन बरषै समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस ॥२॥

चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिऐ न पानि।
प्रेम तृषा बाढति भली घटें घटैगी आनि ॥३॥

रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ॥४॥

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ॥५॥

बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिऐ चतुर चातकहि चूक ॥६॥

उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥७॥

पवि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि ॥८॥

मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जौ चातक मत लेहु ॥९॥

तुलसी चातकही फबै मान राखियो प्रेम।
वक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम ॥१०॥

तुलसी चातक माँगनो एक एक घन दानि।
देत जो भू भाजन भरत लेत जो घूँटक पानि ॥११॥

तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥१२॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ो दानि ॥१३॥

नहिं जाचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मागनेहि को बारिद बिन देइ ॥१४॥

को को न ज्यायो जगत मे जीवन दायक दानि।
भयो कनौडो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥१५॥

साधन साँसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु ॥१६॥

चातक जीवन दायकहि जीवन समयँ सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥१७॥

जीव चराचर जहँ लगें है सब को हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह ॥१८॥

डोलत बिपुल बिहंग बन पिअत पोखरिन बारि।
सजल धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि ॥१९॥

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर ॥२०॥

बास बेष बोलनि चलनि मानस मंजु मराल।
तुलसी चातक प्रेम की कीरति बिसद बिसाल ॥२१॥
प्रेम न परखिअ परुषपन पयद सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरसै मेह ॥२२॥
होइ न चातक पातकी जीवन दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रह्लाद की समुझि प्रेम-पथ गूढ़ ॥२३॥
गरज आपनी सबन को गरज करत उर आनि।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि ॥२४॥
चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड पर परिहैं पुहुमी नीर ॥२५॥
बध्यो बधिक पर्यो पुन्यजल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच ॥२६॥
अंड फोरि कियो चेटुवा तुष पर्यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डार्यो बाहिर बारि ॥२७॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहि बारहीं बार।
तात न तर्पन कीजिऐ बिना बारिधर धार ॥२८॥

सोरठा

जिअत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि।
सुरसरिहू को बारि मरत न मागेउ अरध जल ॥२९॥
सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को ॥३०॥
जाचै बारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही मेह मन ॥३१॥

दोहा

तुलसी कें मत चातकहि केवल प्रेम पिआस।
पिअत स्वाति जल जान जग जाँचत बारह मास ॥३२॥
आलबाल मुकुताहलनि हिय सनेह तरु मूल।
होइ हेतु चित चातकहि स्वाति सलिल अनुकूल ॥३३॥
उष्न काल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं अन जल सींचे रूख ॥३४॥
अन जल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम ॥३५॥
एक अंग जो सनेहता निसि दिन चातक नेह।
तुलसी जासों हित लगै वहि अहार वहि देह ॥३६॥
बिधि रसना तनु स्याम है बंक चलनि बिष खानि।
तुलसी जस श्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ॥३७॥
आपु व्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग ॥३८॥
तुलसी मनि निज दुति फनिहि व्याधहि देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ ॥३९॥
जरत तुहिन लखि बनज बन रबि दै पीठि पराउ।
उदय बिकस अथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ ॥४०॥
देउ आपनें हाथ जल मीनहि माहुर घोरि।
तुलसी जिऐ जो बारि बिनु तौ तु देहि कबि खोरि ॥४१॥
मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥४२॥

तुलसी मिटै न मरि मिटेहुँ साँचो सहज सनेह ।
मोरसिखा बिनु मूरिहूँ पलुहत गरजत मेह ॥४३॥

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत करत सब कोइ ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥४४॥

तुलसी जप तप नेम व्रत सब सबही तें होइ ।
लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ ॥४५॥

कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ ।
ससि छवि हर रवि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ ॥४६॥

कै लघु कै बड़ मीत भल सम सनेह दुख सोइ ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिलें महाविष होइ ॥४७॥

(दोहावली से)

राम का विमान द्वारा अयोध्या को प्रस्थान

दोहा

प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष विषाद समेत तब चले विनय बहु भाखि॥
जामवंत कपिराज नल अंगदादि हनुमान।
सहित विभीषन जे अपर जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहिं कछु प्रेमबस भरि भरि लोचन बारि।
सनमुख चितवहिं रामतन नयननिमेष निवारि॥

चौपाई

अतिसय प्रीति देखि रघुराई, लीन्हे सकल विमान चढ़ाई।
मन महुँ विप्र चरन सिर नावा, उत्तर दिसिहिं विमान चलावा।
चलत विमानु कोलाहल होई, जय रघुबीर कहहिं सब कोई।
सिंहासनु अति उच्च मनोहर, श्री समेत प्रभु बैठे तापर।
राजत रामसहित भामिनी, मेरुसृंग जनु घनु दामिनी।
रुचिर विमान चलेउ अति आतुर, कीन्ही सुमनवृष्टि हरषे सुर।
परम-सुखद चलि त्रिविध बयारी, सागर सर सरि निर्मल बारी।
सगुन होहिं सुन्दर चहुँ पासा, मन प्रसन्न निर्मल सुभ आसा।
कह रघुबीर देखु रन सीता, लछिमन इहाँ हतेउ इँद्रजीता।
हनूमान अंगद के मारे, रन महि परे निसाचर भारे।
कुंभकरन रावन दोउ भाई, इहाँ हते सुर-मुनि-दुख-दाई।

दोहा

इहाँ सेतु बाँधेउँ अरु थापेउँ सिव सुखधाम।
सीतासहित कृपायतन संभुहि कीन्ह प्रनाम॥
जहँ जहँ करुनासिंधु बन कीन्ह बास बिस्राम।
सकल देखाये जानकिहि कहे सबन्हि के नाम॥

चौपाई

सपदि बिमानु तहाँ चलि आवा, दंडकबन जहँ परम सुहावा।
कुंभजादि मुनिनायक नाना, गये रामु सब के अस्थाना।
सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा, चित्रकूट आयउ जगदीसा।
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोखा, चला बिमान तहाँ ते चोखा।
बहुरि राम जानकिहि देखाई, जमुना कलि-मल-हरनि सुहाई।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता, राम कहा प्रनाम करु सीता।
तीरथपति पुनि देखु प्रयागा, देखत जन्म-कोटि-अघ भागा।
देखु परमपावनि पुनि बेनी, हरनि सोक हरिलोक-निसेनी।
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि, त्रिविध-ताप भवरोग नसावनि।

दोहा

सीता सहित अवध कहँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषत राम॥
बहुरि त्रिबेनी आइ प्रभु हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह समेत महीसुरन्ह दान बिबिध बिधि दीन्ह॥

चौपाई

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई, धरि बटुरूप अवधपुर जाई।
भरतहि कुसल हमारि सुनायहु, समाचार लेइ तुम्ह चलि आयहु।

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ, तब प्रभु भरद्वाज पहिँ गयऊ।
नाना विधि मुनि पूजा कीन्ही, अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही।
मुनिपद वंदि जुगल कर जोरी, चढि विमान प्रभु चले बहोरी।
इहाँ निषाद सुना हरि आये, नाव नाव कहँ लोग बोलाये।
सुरसरि नाँघि जान जब आवा, उतरेउ तट प्रभु आयसु पावा।
तब सीता पूजी सुरसरी, बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी।
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा, सुंदरि तव अहिवात अभंगा।
सुनत गुहा धायेउ प्रेमाकुल, आयेउ निकट परम-सुख-संकुल।
प्रभुहि विलोकि सहित वैदेही, परेउ अवनि तन सुधि नहिँ तेही।
प्रीति परम विलोकि रघुराई, हरषि उठाइ लियो उर लाई।

छंद

लियो हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राय रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पदपंकज विलोकि विरंचि-शंकर-सेव्य जे।
सुखधाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि ते॥
सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोहबस विसराइयो॥
यह रावनारिचरित्र पावन राम-पद-रति-प्रद सदा।
कामादिहर विग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

दोहा

समर विजय रघुबीर के चरित जे सुनहिँ सुजान।
विजय विवेक विभूति नित तिन्हहिँ देहिँ भगवान॥
यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु विचार।
श्री-रघु-नायक नाम तजि नाहिँ न आन अधार'॥

(रामचरितमानस से)

कवितावली

बालकांड

दुर्मिल सवैया

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-विमोचन को ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक से॥
'तुलसी' मनरंजन रंजित-अंजन नैन सु-खंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥ ॥

पग नूपुर औ' पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये॥
अरविंद सो आनन, रूप-मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन मों न बस्यो अस बालक जो 'तुलसी' जग मे फल कौन जिये॥२॥

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी'-मन-मंदिर में बिहरैं॥३॥

पद-कंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं-सर पंकज-पानि लिये।
लरिका-सँग खेलत डोलत हैं, सरजू-तट, चौहट, हाट, हिये॥
'तुलसी' अस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये॥४॥

छप्पय

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुरबिमान, हिमभानु, भानु सघटित परस्पर॥
चौंके बिरंचि सकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥५॥

मनहरण कवित्त

नगर निसान वर बाजैं, ब्योम दुदुभी,
विमान चढ़ि गान कैके सुरनारि नाचहीं।
जय जय तिहूँ पुर, जयमाल राम-उर,
बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं॥
जनक को पन जयो, सबको भावतो भयो,
'तुलसी' मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।
सांवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरी,
'जोरी जियौ जुग-जुग' सखीजन जाँचहीं॥६॥

सवैया

गर्भ के अर्भक काटन को पटु-धार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राज-सभा 'धनु को दल्यौ?' हौं दलिहौं बल ताको।
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै, मरिहै, करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो-सो ढोटो है काको॥७॥

काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए।
लक्खन-राम विलोकि सप्रेम, महारिसि ते फिरि आँखि दिखाए॥
धीर-सिरोमनि, वीर बड़े, विनयी, विजयी, रघुनाथ सुहाए।
लायक हे भृगुनायक सो धनु-सायक सौंपि सुभाय सिधाए॥८॥

अयोध्याकांड

मत्तगयंद सवैया

कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यों पथ के साथी ज्यों लोग-लुगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥९॥

छंद

"कीजै कहा, जीजी जू!" सुमित्रा परि पायँ कहै,
'तुलसी' सहावै विधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही ते जानियतु,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है॥
नाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माँह,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है"॥१०॥

मत्तगयंद सवैया

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
'तुलसी' अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥११॥

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि-प्रभाउ महा है।
पाहन ते वन-वाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायँ पखारि कै नाव चढाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के वर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥१२॥

छंद

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछू वेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू!
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं?
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरी सों, साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं॥१३॥

मत्तगयंद सवैया

पुर तें निकसीं रघुबीर-बधू,
धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की,
पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति है 'चलनो अब केतिक,
पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै?'
तिय की लखि आतुरता पिय की
अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥१४॥

'जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय, छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े'।
'तुलसी' रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी, नाह को नेह लख्यौ पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े ॥१५॥

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु री सखी! मोहिं-सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं? सकुचाति मही पद-पंकज छ्वै॥
'तुलसी' सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ' चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥१६॥

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि-बेष कियो है॥
संग लिये बिधु-बैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं? सकुचात हियो है ॥१७॥

रानी मैं जानी अजानी महा,
पबि पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो,
कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये,
बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है?
आँखिन में सखि! राखिबे जोग,
इन्हें किमि कै बनबास दियो है ॥१८॥

सीस जटा, उर बाहु बिसाल,
विलोचन लाल, तिरीछी-सी भौहैं।
तून सरासन बान धरे,
'तुलसी' बन-मारग मे सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय
चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्रामबधू सिय सों
'कहौ साँवरे-से, सखि रावरे को हैं?'॥१६॥

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने,
सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं
समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै
अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग मे भानु-उदै
बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥२०॥

धरि धीर कहैं 'चलु देखिय जाइ
जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहिहै जग पोच, न सोच कछू,
फल लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ,
कल आपुस में कछु पै कहिहैं।'
'तुलसी' अति प्रेम लगीं पलकैं,
पुलकीं लखि राम हिये महि हैं॥२१॥

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि,
पानि सरासन सायक लै॥
बन खेलत राम फिरैं मृगया,
'तुलसी' छबि सो बरनै किमि कै ?
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी
मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगै न भगैं जिय जानि सिलीमुख
पंच धरे रतिनायक है॥२२॥

विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे॥
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली, रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥२३॥

किष्किंधाकांड

मनहरण कवित्त

जब अंगदादिन की मति-गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहुँ ओर, औरन को कलु गो॥
'तुलसी' रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो।
चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥२४॥

सुन्दरकांड

मनहरण कवित्त

वालधी बिसाल विकराल-ज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलिवे को काल रसना पसारी है।
कैधौं व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीररस वीर तरवारि-सी उघारी है॥
'तुलसी' सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी-कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
'कानन उजार्‌यो अव नगर प्रजारो है' ॥२५॥

जहाँ तहाँ बुबुक विलोकि बुबुकारी देत,
'जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
ढोटे-छोटे छोहरा, अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगाओ जागि जागि रे॥
'तुलसी' विलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे ॥२६॥

देखि ज्वालजाल, हाहाकार दसकंध सुनि,
कह्यो 'धरो धरो' धाए वीर बलवान हैं।
लिए सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धीरे धनु-बान हैं॥

'तुलसी' समिध सौंज, लंक जज्ञकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव तिल धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल, वलमूल प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं ॥२७॥

गाज्यो कपि गाज ज्यों, विराज्यो ज्वालजाल-जुत,
भाजे वीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाई जातुधान-धारि,
वारिधारा उलदै जलद ज्यों न सावनो॥
लपट झपट झहराने, हहराने बात,
भहराने भट, परयो प्रवल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
'नाथ न चलैगो वल अनल भयावनो' ॥२८॥

वडो विकराल वेप देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद, सविपाद कहै रावनो।
वेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता, वड़ाई जीतो वावनो॥
'तुलसी' सयाने जातुधान पछिताने मन,
'जाको ऐसो दूत सो साहव अवै आवनो।'
काहे की कुसल रोपे राम वामदेवहू के,
विपम वली सों वादि वैर को वढावनो ॥२९॥

'पानी पानी पानी' सव रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गजचालि है।

बसन बिसारैं, मनि-भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं 'क्योंहू कोऊ पालि है ?'
'तुलसी' मंदोवै मींजि हाथ, धुनि माथ कहै,
'काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है।'
बापुरो बिभीषन पुकारि बार-बार कह्यो,
'बानर बड़ी बलाइ घने घर घालि है' ॥३०॥

'कानन उजार्‌यो तौ उजार्‌यो, न बिगार्‌यो कछू,
बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों।
निपट निडर देखि काहू न लख्यो बिसेषि,
दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों॥
छोटे औ' बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों।'
'तुलसी' मंदोवै रोइ-रोइ के बिगोवै आपु,
'बार बार कह्यौं मैं पुकारि दाढ़ीजार सों' ॥३१॥

लागि लागि आगि, भागि-भागि चले जहाँ तहाँ
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूमधुंध अंध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि बारि' बार-बारहीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंद खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
'तात तात ! तौंसियत, झौंसियत झारहीं' ॥३२॥

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट-उर,
दिन दिन बिकल सकल सुख-राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, श्रोत पावै न मनाक सो॥
राम की रजाय तें रसायनी समीर-सूनु,
उतरि पयोधि-पार सोधि सरवाक सो।
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो॥३३॥

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि लखि
लंक सिद्धिपीठि निसि जागो है मसान सो।
'तुलसी' बिलोकि महासाहस प्रसन्न भई,
देवी सिय सारिपी, दियो है बरदान सो॥
बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानुकुल-भानु को प्रताप-भानु-भानु सो।
करत बिसोक लोक कोकनद, कोक-कपि,
कहै जामवंत आयो-आयो हनुमान सो॥३४॥

लंकाकांड

मत्तगयंद सवैया

जब पाहन भे बनबाहन-से, उतरे बनरा 'जय राम' रढ़े।
'तुलसी' लिए सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बलबारि बढ़े॥
करि कोप करैं रघुबीर को आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े।
चतुरंग चमू पल में दलिकै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े॥३५॥

रोप्यो पाँव पैज कै विचारि रघुवीर-बल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥
महाबली बालि को, दबत दलकति भूमि,
'तुलसी' उछरि सिंधु, मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि, घट्टा परो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥३६॥

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हें मन में, कबहूँ न भए रन में तनु ढीले॥
'तुलसी' गज-से लखि केहरि लौं झपटे-पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले॥३७॥

सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरि, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं॥
'तुलसी' जिन्हें धाए धुकै धरनीधर, धौर धकानि सो मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥३८॥

गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनए घन सावन के।
'तुलसी' उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुर-दावन के॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर-बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी-उपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के॥३९॥

झूलना छंद

कतहुँ विटप भूधर उपारि पर सेन बरक्खत।
कतहुँ वाजि सों बाजि मर्दि, गजराज करक्खत।
चरन-चोट चटकन-चकोट अरि उर सिर बज्जत।
विकट कटक विद्दरत, वीर बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवन-नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥४०॥

छंद

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे
मूँड के कमंडलु-खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड वनी तापसी सी,
तीर-तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै।
'तुलसी' वैताल भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै॥४१॥

सवैया

राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हडावरि फूटि।
रावन वीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी॥
सोनित छींट-छटानि-जटे 'तुलसी' प्रभु सोहैं, महाछवि छूटी।
मानो मरक्त-सैल विसाल मे फैलि चलीं वर वीरबहूटी॥४२॥

(कवितावली से)

गीतावली

बालकांड

१

राग केदारा

पौढ़िये लालन, पालन हौं झुलावौं।
कर पद मुख चखकमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ॥१॥
बाल-विनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि-खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग ताग गुहिवे कहँ मति-मृगनयनि बुलावौं ॥२॥
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुवर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ॥३॥

२

राग बिलावल

सोहत सहज सुहाये नैन।
खंजन मीन कमल सकुचत तव जब उपमा चाहत कवि दैन ॥१॥
सुंदर सब अंगनि सिसु-भूषण राजत जनु सोभा आये लैन।
बड़ो लाभ, लालची लोभ-बस रहि गयो लखि सुखमा बहु मैन ॥२॥
भोर भूप लिये गोद मोद भरे, निरखत वदन, सुनत कल बैन।
बालक-रूप अनूप राम-छवि निवसति तुलसीदास-उर-ऐन ॥३॥

३

राग नट

बिहरत अवध-वीथिन राम ।
संग अनुज अनेक सिसु, नव-नील-नीरद-स्याम ॥१॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान ।
पीत-पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु-बान ॥२॥
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि ।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि ॥३॥

४

अहल्योद्धार, राग सूहो

रामपद-पदुम-पराग परी ।
ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी ॥१॥
प्रबल पाप पति-साप दुसह दव दारुन जरनि जरी ।
कृपासुधा सिँचि बिबुध-बेलि ज्यौं फिर सुख-फरनि फरी ॥२॥
निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुवति बराय बरी ।
सोइ मूरति भइ जानि नयनपथ इकटक तें न टरी ॥३॥
बरनति हृदय सरूप, सील, गुन प्रेम-प्रमोद-भरी ।
तुलसीदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी ? ॥४॥

५

राग गौरी

नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ, री ।
राजकुँवर-मूरति रचिबेकी रुचि,
सुबिरचि श्रम कियो है कितौ, री ॥१॥

नख-सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो
न परत सुख होत जितौ, री।
साँवर रूप-सुधा भरिबे कहँ,
नयन-कमल कल कलस रितौ, री ॥२॥
मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन
चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री।
तुलसी प्रभु भजिहैं संभु-धनु,
भूरिभाग सिय-मातु-पितौ, री ॥३॥

६

राग केदारा

दूलह राम, सीय दुलही री!
घन-दामिनि बर बरन, हरन-मन,
सुंदरता नखसिख निबही, री ॥१॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित,
सखि अवली लखि ठगि सी रही, री।
जीवन-जनम-लाहु, लोचन-फल है इतनोइ,
लह्यो आजु सही, री ॥२॥
सुखमा सुरभि सिंगार-छीर दुहि
मयन अमियमय कियो है दही, री।
मथि माखन सिय-राम सँवारे,
सकल भुवन छबि मनहु मही, री ॥३॥
तुलसीदास जोरी देखत सुख-सोभा,
अतुल, न जाति कही, री।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो,
सिला लवनि रति-काम लही री ॥४॥

अयोध्याकांड

७

राग गौरी

रहि चलिए सुन्दर रघुनायक ।
जो सुत ! तात-वचन-पालन-रत,
जननिउ तात ! मानिबे लायक ॥१॥
बेद-विदित यह बानि तुम्हारी,
रघुपति सदा संत-सुखदायक ।
राखहु निज मरजाद निगमकी,
हौं बलि जाउँ, धरहु धनुसायक ॥२॥
सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप,
सुनि सँदेस रघुनाथ-सिधायक ।
यह दूसन विधि तोहि होत
अब रामचरन-वियोग-उपजायक ॥३॥
मातु वचन सुनि स्रवत नयन जल,
कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक ।
तुलसीदास सुरकाज न साध्यो तौ
तो दोष होय मोहि महि आयक ॥४॥

८

राग सोरठ

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौं ?
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौनसों कहिहौं ॥१॥

इहि आँगन बिहरत मेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हे।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत, बहु बिनोद तुम्ह कीन्हे ॥२॥
जिन्ह श्रवननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह श्रवननि बनगवन सुनति हौं, मोतें कौन अभागी ? ॥३॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन, बदनकमल बिनु देखे।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ? ॥४॥
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥५॥

९

राग बिलावल

जबहिं रघुपति-सँग सीय चली।
बिकल-बियोग लोग-पुरतिय कहैं, अति अन्याउ, अली ॥१॥
कोउ कहै, मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली।
कोउ कहै, कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-बिष-फलनि फली ॥२॥
एक कहैं, बन जोग जानकी ! बिधि बड़ बिषम बली।
तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली ॥३॥

१०

ठाढ़े हैं लषन कमलकर जोरे।
उर धकधकी, न कहत कछु सकुचनि,
प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे ॥१॥
कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन,
प्रान-कृपान बीर-सी छोरे।
तात बिदा माँगिए मातुसों,
बनिहै बात उपाइ न औरे ॥२॥

जाइ चरन गहि आयसु जाँची,
जननि कहत बहुभाँति निहोरे।
सिय रघुवर-सेवा सुचि ह्वैहौ तौ,
जानिहौं, सही सुत मोरे ॥३॥

कीजहु इहै विचार निरंतर,
राम समीप सुकृत नहि थोरे।
तुलसी सुनि सिष चले चकित-चित,
उड़्यो मानो विहग वधिक भए भोरे ॥४॥

११

तू देखि देखि री ! पथिक परम सुंदर दोऊ।
मरकत-कलधौत-बरन, काम-कोटि-कांतिहरन,
चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ ॥१॥

कर सर-धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
संग चंद्रबदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ।
तापस बर बेष किए, सोभा सब लूटि लिए,
चितके चोर, वय किसोर, लोचन भरि जोऊ ॥२॥

दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
परसपर कहैं, सखि ! अनुराग ताग पोऊ।
तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सघन,
कृपिन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ ॥३॥

१२

राग केदारा

मनोहरताके मानो ऐन ।
स्यामल-गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥१॥
बीच बधू बिधुबदनि बिराजति, उपमा कहुँ कोऊ है न ।
मानहु रति-ऋतुनाथ सहित मुनि-बेष बनाए है मैन ॥२॥
किधौं सिंगार-सुखमा-सुप्रेम मिलि चले जग-चित-बित लैन ।
अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन ॥३॥
सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने ग्रामबधुन्हके बैन ।
तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे, किए प्रेम कनौडे कै न ? ॥४॥

१३

राग गौरी

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ ।
स्यामल-गौर, सहज सुंदर, सखि !
बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ ॥१॥
कर कमलनि सर, सुभग सरासन,
कटि मुनिबसन-निषंग सोहाए ।
भुज प्रलंब, सब अंग मनोहर,
धन्य सो जनक-जननि जेहि जाए ॥२॥
सरद-बिमल-बिधु-बदन, जटा सिर,
मंजुल अरुन-सरोरुह-लोचन ।
तुलसीदास मनमथ मारगमे,
राजत कोटि-मदन-मदमोचन ॥३॥

१४

राग केदारा

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही।
गए जो पथिक गोरे-साँवरे सलोने,
सखि! संग नारि सुकुमारि रही ॥१॥
जानि-पहिचानि बिनु आपु ते, आपुनेहु ते,
प्रानहुतें प्यारे प्रियतम उपही।
सुधाके, सनेहहूके सार लै सँवारे बिधि,
जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही ॥२॥
बहुरि बिलोकिबे कबहुक, कहत,
तनु पुलक, नयन जलधार बही।
तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुवती सिथिल,
बिनु प्रयास परीं प्रेम सही ॥३॥

१५

राग मलार

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषाऋतु प्रबेस बिसेष गिरि देखन मन अनुरागत ॥१॥
चहुँदिसि बन संपन्न, बिहँग-मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥२॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि।
मनहु आदि अभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि भृंगनि ॥३॥
सिखर परस घन-घटहि, मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥४॥

जल-जुत विमल सिलनि झलकत नभ-बन-प्रतिबिंब तरंग।
मानहु जग-रचना विचित्र बिलसति बिराट अँग अंग ॥५॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानौ राम-भगति के पाछे ॥६॥

१६

राग सोरठ

आजुको भोर, और सो, माई।
सुनौ न द्वार बेद-बंदी-धुनि, गुनिगन-गिरा सोहाई ॥१॥
निज निज सुंदर पति-सदननिते रूप-सील-छबि-छाई।
लेन असीस सीय आगे करि मोपै सुतवधू न आई ॥२॥
बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री! सुमित्रा माता?'
तुलसी मनहु महासुख मेरो देखि न सकेउ बिधाता ॥३॥

१७

जननी निरखति बान-धनुहियाँ।
बार बार उर-नैननि लावति प्रभुजूकी ललित पनहियाँ ॥१॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे।
उठहु तात! बलि मातु बदनपर, अनुज-सखा सब द्वारे ॥२॥
कबहुँ कहति यों, बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ, भैया।
बंधु बोलि जेइय जो भावै, गई निछावरि मैया ॥३॥
कबहुँ समुझि बनगवन रामको रहि चकि चित्र लिखी-सी।
तुलसीदास वह समय कहेते लागति प्रीति सिखी-सी ॥४॥

१८

माई री! मोहि कोउ न समुझावै।
राम-गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ॥१॥
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम-लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उरको, विधि जो भयो विपरीता ॥२॥
दुख न रहै रघुपतिहि विलोकत, तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान, सुनहु, सखि! अरुझि परी यहि लेखे ॥३॥
कौसल्याके विरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसीदास रघुबीर-बिरहकी पीर न जाति बखानी ॥४॥

१९

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो री?
'राम जाहु कानन', कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो, री ॥१॥
दिनकर-बस, पिता दसरथ-से, राम-लषन-से भाई।
जननी! तू जननी? तौ कहा कहौं, विधि केहि खोरि न लाई? ॥२॥
हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो।
कुल-कलंक मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो? ॥३॥
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वैहैं, ईस अजस मेरो हरिहैं।
तुलसीदास मोको बड़ो सोच है, तू जनम कौनि विधि भरिहैं ॥४॥

२०

तातें हौं देत न दूषन तोहू।
रामविरोधी उर कठोरतें प्रगट कियो है विधि मोहू ॥१॥
सुंदर सुखद सुसील सुधानिधि, जरनि जाइ जिहि जोए।
बिष बारुनि बंधु कहियत बिधु! नातो मिटत न धोए ॥२॥

होते जौ न सुजान-सिरोमनि राम सबके मन माहीं।
तौ तोरी करतूति, मातु! सुनि, प्रीति-प्रतीति कहा हीं? ॥३॥
मृदु मंजुल सींची-सनेह सुचि सुनत भरत-बर-बानी।
तुलसी 'साधु साधु' सुर-नर-मुनि कहत प्रेम पहिचानी ॥४॥

२१

सुकसों गहवर हिये कहै सारो

बीर कीर! सिय-राम-लषन बिनु लागत जग अँधियारो ॥१॥
पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप हित अनहित न बिचारो।
कुलगुर-सचिव-साधु सोचतु, बिधि को न बसाइ उजारो? ॥२॥
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो।
सुने न बचन करुना करके, जब पुर-परिवार सँभारो ॥३॥
भैया भरत भावतेके सँग बन सब लोग सिधारो।
हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ॥४॥
सुनि खग कहत अंब! मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम-गुन-गारो ॥५॥
जीवन जग जानकी-लखनको, मरन महीप सँवारो।
तुलसी और प्रीतिकी चरचा करत, कहा कछु चारो ॥६॥

२२

राग केदारा

जानत हौ सबहीके मनकी।
तदपि, कृपालु! करौं बिनती सोइ,
सादर, सुनहु दीन-हित जनकी ॥१॥

ए सेवक संतत अनन्य अति,
ज्यों चातकहि एक गति घनकी।
यह विचारि गवनहु पुनीत पुर,
हरहु दुसह आरति परिजनकी ॥२॥
मेरो जीवन जानिय ऐसोइ, जियै,
जैसो अहि, जासु गई मनि फनकी।
मेटहु कुलकलंक कोसलपति,
आग्या देहु नाथ मोहि बनकी ॥३॥
मोको जोइ लाइय लागै सोइ,
उतपति है कुमातुते तनकी।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि,
प्रभु अब लाज करहु निज पनकी ॥४॥

७३

राग सोरठ

आली! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे?
लेत हिये भरि भरि पतिको हित मातुहेतु सुत जैसे ॥१॥
बार बार हिहिनात हेरि उत, जो बोलै कोउ द्वारे।
अंग लगाइ लिए बारेतें करुनामय सुत प्यारे ॥२॥
लोचन सजल, सदा सोवत-से, खान-पान बिसराए।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आए ॥३॥
तुलसी प्रभुके बिरह-बधिक हठि राजहंस-से जोरे।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति राम-लखन के घोरे ॥४॥

२४

राघौ ! एक वार फिरि आवौ ।
ए वर वाजि विलोकि आपने, वहुरो वनहि सिधावौ ॥१॥
जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, वार वार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अव निपट विसारे ॥२॥
भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे, मनहु कमल हिम-मारे ॥३॥
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं वन, कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसी मोहि और सवहिनते इन्हको वड़ो अँदेसो ॥४॥

अरण्यकांड

२५

राग सोरठ

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहु अरघजल दीन्हों ॥१॥
सुनहु, लषन ! खगपतिहि मिले वन मैं पितु-मरन न जान्यौ ।
सहि न सक्यौ सो कठिन विधाता, वड़ो पछु आजुहि भान्यौ ॥२॥
वहु विधि राम कह्यौ तनु राखन, परम धीर नहि डोल्यौ ।
रोकि प्रेम, अवलोकि वदन-विधु, वचन मनोहर वोल्यौ ॥३॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं ।
जाको नाम मरत मुनिदुरलभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं ? ॥४॥

सुन्दरकांड

२६

राग केदारा

कबहूँ, कपि ! राघव आवहिंगे ?
मेरे नयनचकोर प्रीतिबस,
राकाससि मुख दिखरावहिंगे ॥१॥
मधुप, मराल, मोर, चातक,
ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग अंग छबि भिन्न भिन्न सुख,
निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥२॥
बिरह-अगिनि जरि रही लता,
ज्यों कृपादृष्टि-जल पलुहावहिंगे ।
निज वियोग-दुख जानि दयानिधि,
मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥३॥
लोकपाल, सुर, नाग, मनुज
सब परे बंदि कब मुकतावहिंगे ?
रावनबध रघुनाथ-बिमल-जस,
नारदादि मुनिजन गावहिंगे ॥४॥
यह अभिलाष रैन-दिन मेरे,
राज बिभीषन कब पावहिंगे ।
तुलसीदास प्रभु मोहजनित भ्रम,
भेदबुद्धि कब बिसरावहिंगे ? ॥५॥

२७

राग मारू

कपिके चलत सियको मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर
नीर नयनन्हि छायो ॥१॥
कहन चह्यो सँदेस, नहि कह्यो, पियके,
जियकी जानि हृदय दुसह दुख दुरायो।
देखि दसा ब्याकुल हरीस, ग्रीषमके,
पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो ॥२॥
मीचते नीच लगी अमरता, छलको,
न बलको निरखि थल परुष प्रेम पायो।
कै प्रबोध मातु-प्रीतिसो असीस,
दीन्ही ह्वैहै तिहारोई मन भायो ॥३॥
करुना-कोप-लाज-भय-भरो कियो गौन,
मौनही चरन-कमल सीस नायो।
यह सनेह-सरबस समौ, तुलसी,
रसना रूखी, ताहीते परत गायो ॥४॥

२८

राग केदारा

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि।
जानौं कछु, पै सकौं कहि हौं न ॥१॥

लोचन-नीर कृपिनके धन ज्यों,
रहत निरंतर लोचनन-कोन।
'हा' धुनि खगी लाज-पिंजरी महँ,
राखि हिये बडे बधिक हठि मौन ॥२॥
जेहि वाटिका बसति, तहँ खग-मृग,
तजि तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहु,
तेहि मग पगु न धर्‌यो तिहुँ पौन ॥३॥
तुलसिदास प्रभु ! दसा सीयकी
मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस, दूरि कीजै दुख,
हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन ॥४॥

लंकाकांड

२६

राग केदारा

राम लषन उर लाय लए हैं।
भरे नीर राजीव-नयन, सब अँग परिताप तए हैं ॥१॥
कहत ससोक बिलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति गुथए हैं।
सेवक-सखा भगति-भायप-गुन चाहत अब अथए हैं ॥२॥
निज कीरति-करतूति, तात ! तुम सुकृती सकल जए हैं।
मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लए हैं ॥३॥

मेरे पनकी लाज इहाँलौं हठि प्रिय प्रान दए हैं।
लागति साँगि विभीषन ही पर, सीपर आपु भए हैं ॥४॥
सुनि प्रभु-वचन भालु, कपि-गन, सुर सोच सुखाइ गए हैं।
तुलसी आइ पवनसुत-विधि मानो फिरि निरमये नए हैं ॥५॥

३०

राग सोरठ

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ॥१॥
सुनु, सुग्रीव ! साँचेहू मोपर फेर्यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लखन-सो भ्राता ॥२॥
गिरि, कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज सँघाती।
ह्वैहै कहा बिभीषनकी गति, रही सोच भरि छाती ॥३॥
तुलसी सुनि प्रभु-वचन भालु-कपि सकल बिकल हिय हारे।
जामवंत हनुमंत बोलि तब, औसर जानि प्रचारे ॥४॥

३१

राग केदारा

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै।
पाइ सजीवन, जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय शरीरै ॥१॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि, जैसे पाठ-अरथ-चरचा कीरै।
सोभा-सुख, छति-लाहु भूपकहँ, केवल कांति-मोल हीरै ॥२॥
तुलसी सुनि सौमित्रि-वचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै।
उपमा राम-लषनकी प्रीतिकी क्यों दीजै खीरै-नीरै ॥३॥

३२

राग सोरठ

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग! फुरि बाता ॥१॥
दूध-भातकी दोनी दैहौं, सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय-सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥२॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ, पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥३॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकटतें समाचार लै आयो।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥४॥

उत्तरकांड

३३

राग सोरठ

कैकेयी जौलौं जियति रही।
तौलौं बात मातुसों मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥१॥
मानी राम अधिक जननीतें, जननिहु गँस न गही।
सीय-लषन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही ॥२॥
लोक-बेद-मरजाद दोष-गुन गति चित चख न चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम-सनेह सही ॥३॥

विनय-पत्रिका

१

राग भैरव

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे ॥१॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे ॥२॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे।
राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे ॥३॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥४॥
राम-नाम-छाडि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे ॥५॥

२

जागु, जागु, जीव जड़ ! जोहै जग-जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥१॥
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति-संताप रे।
बूड्यो मृग-बारि खायो जेवरी को साँप रे ॥२॥
कहैं बेद-बुध, तू तो बूझि मनमाहिं रे।
दोष-दुख सपनेके जागे ही पै जाहिं रे ॥३॥
तुलसी जागेते जाय ताप तिहूँ ताय रे।
राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥४॥

३

राग टोड़ी

मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ॥१॥
नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन बिषय सँग लागे।
हृदय मलिन बासना-मान-मद, जीव सहज सुख त्यागे ॥२॥
परनिंदा सुनि श्रवण मलिन भे, वचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराये ॥३॥
तुलसिदास ब्रत-दान, ग्यान-तप, सुद्धिहेतु श्रुति गावै।
राम-चरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥४॥

४

राग धनाश्री

सुनु मन मूढ सिखावन मेरो।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ ! यह समुझ सवेरो ॥१॥
बिछुरे ससि-रबि मन-नैननितें, पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥२॥
जद्यपि अति पुनीता सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥३॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति संदेहु निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँडि करि, होहु रामको चेरो ॥४॥

५

ऐसी मूढ़ता या मनकी।
परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओसकनकी ॥१॥

धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घनकी ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचनकी ॥२॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तनकी ।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आननकी ॥३॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि ! जानत हौ गति जनकी ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी ॥४॥

६

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं ॥१॥
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं ।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ॥२॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥३॥

७

राग बिहाग, बिलावल

केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना बिचित्र हरि ! समुझि मनहिं मन रहिये ॥१॥
सून्य भीतिपर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥२॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥३॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥४॥

८

माधव ! मोह-फाँस क्यों टूटै ।
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥१॥
घृतपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाय कलपसत, औटत नास न पावै ॥२॥
तरु-कोटर महँ बस बिहंग तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय बिचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥३॥
अंतर मलिन बिषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध बिधि मारे ॥४॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु बिमल बिबेक न होई ।
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई ॥५॥

९

हे हरि ! कवन दोष तोहिं दीजै ।
जेहि उपाय सपनेहुँ दुरलभ गति, सोइ निसि-बासर कीजै ॥१॥
जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे ।
तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों, फिरत बिषय अनुरागे ॥२॥
भूत-द्रोह कृत मोह-बस्य हित आपन मैं न बिचारो ।
मद-मत्सर-अभिमान ग्यान रिपु, इन महँ रहनि अपारो ॥३॥
बेद-पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जगव्यापी ।
बेधत नहिं श्रीखंड बेनु इव, सारहीन मन पापी ॥४॥
मैं अपराध-सिंधु करुनाकर ! जानत अंतरजामी ।
तुलसिदास भव-ब्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु गामी ॥५॥

१०

हे हरि! कवन जतन भ्रम भागै।
देखत, सुनत, विचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं त्यागै ॥१॥
भगति-ग्यान वैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई।
कोउ भल कहउ, देउ कछु, असि बासना न उरते जाई ॥२॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै।
निज करनी विपरीत देखि मोहिं समुझि महाभय लागै ॥३॥
जद्यपि भग्न-मनोरथ विधिवस, सुख इच्छत, दुख पावै।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥४॥
हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख, हरे बनहिं प्रभु तोरे ॥५॥

११

हे हरि! यह भ्रमकी अधिकाई।
देखत, सुनत, कहत, समुझत संसय-संदेह न जाई ॥१॥
जो जग मृषा ताप-त्रय-अनुभव होइ कहहु केहि लेखे।
कहि न जाय मृगबारि सत्य, भ्रम ते दुख होइ बिसेखे ॥२॥
सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै ॥३॥
अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम-संतोष-दया-बिबेक तें, व्यवहारी सुखकारी ॥४॥
तुलसिदास सब बिधि प्रपञ्च जग, जदपि झूठ श्रुति गावै।
रघुपति-भगति संत-संगति बिनु, को भव-त्रास नसावै ॥५॥

१२

राग नट

हे प्रभु ! मेरोई सब रोसु ।
सीलसिंधु कृपालु नाथ अनाथ आरत-पोसु ॥१॥
वेष वचन बिराग मन अघ अवगुननिको कोसु ।
राम प्रीति प्रतीति पोली, कपट-करतब ठोसु ॥२॥
राग-रंग कुसंग ही सों, साधु संगति रोसु ।
चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥३॥
संभु-सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु ।
दंभहू कलि नाम कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥४॥
मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।
रामनाम प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम परितोसु ॥५॥

१३

राग सोरठ

रघुपति-भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई ॥१॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ॥२॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बलतें न कोउ बिलगावै ।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥३॥
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी ॥४॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस-काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं ॥५॥

१४

जोपै राम-चरन-रति होती।
तौ कत त्रिविध सूल निसिबासर सहते बिपति निसोती ॥१॥
जो संतोष-सुधा निसिबासर सपनेहुँ कबहुँक पावै।
तौ कत विषय बिलोकि झूँठ जल मन-कुरंग ज्यों धावै ॥२॥
जो श्रीपति-महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए।
तौ कत द्वार-द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥३॥
जे लोलुप भये दास आसके ते सबहीके चेरे।
प्रभु-बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥४॥
नहिं एकौ आचरन भजनको, बिनय करत हौं ताते।
कीजै कृपा दास तुलसी पर, नाथ नामके नाते ॥५॥

१५

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो ॥१॥
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥२॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो ॥३॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भगति लहौंगो ॥४॥

१६

राग बिलावल

कहाँ जाउँ, कासों कहौं, कौन सुनै दीनकी।
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीनकी ॥१॥

जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधारके अधार गुनगन तेरे हैं ॥२॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को।
मोसे दोस कोस पोसे, तोसे माय जायो को ॥३॥
मोसे क्रूर कायर कुपूत कौडी आधके।
किये बहुमोल तै करैया गीध-आधके ॥४॥
तुलसीकी तेरे ही बनाये, बलि, बनैगी।
प्रभुकी बिलंब-अंब दोष-दुख जनैगी ॥५॥

१७

राग आसावरी

ताहि तें आयो सरन सबेरें।
ग्यान बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ ! न मेरें ॥१॥
लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु फिरत रैनि दिन घेरें।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत, फिरै तिहारेहि फेरें ॥२॥
दोष-निलय यह बिषय सोक-प्रद कहत संत श्रुति टेरें।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो, हरि तुम्हरेहि प्रेरें ? ॥३॥
बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरें।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरें ॥४॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरें।
तुलसिदास यह बिपति बागुरौ तुम्हहिं सों बनै निबेरें ॥५॥

१८

राग गौरी

जो पै जानकिनाथ सो नातो नेहु न नीच।
स्वारथ परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥१॥

धरम बरन आश्रमनिके पैयत पोथिही: पुरान।
करतब बिनु बेष देखिये, ज्यों सरीर बिनु प्रान ॥२॥
बेद-बिहित-साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि।
राम-प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर-सरिता बिनु वारि ॥३॥
नाना पथ निरबान के, नाना विधान बहु भाँति।
तुलसी तू मेरे कहे जपु राम-नाम दिन-राति ॥४॥

१६

राग भैरवी

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते ॥१॥
सहसबाहु, दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥२॥
सुत-वनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते ॥३॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय-भोग बहु घी ते ॥४॥

२०

राग कल्याण

ऐसी कौन प्रभुकी रीति ?
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥१॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥२॥

कामसोहित गोपिकनिपर कृपा अतुलित कीन्ह ।
जगत-पिता बिरंचि जिन्हके चरनकी रज लीन्ह ॥३॥
नेमतें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि ।
कियो लीन सु आपमें हरि राज-सभा मँझारि ॥४॥
ब्याध चित दै चरन मार्‍यो मूढमति मृग जानि ।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥५॥
कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ ।
प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥६॥

२१

आपनो कबहुँ करि जानिहौ ।
राम गरीबनिवाज राजमनि, बिरद-लाज उर आनिहौ ॥१॥
सील-सिंधु, सुन्दर, सब लायक, समरथ, सदगुन-खानि हौ ।
पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु, प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ ॥२॥
वेद-पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दिन-दानि हौ ।
कहि आवत, बलि जाउँ, मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हौ ॥३॥
आरत-दीन-अनाथनिके हित मानत लौकिक कानि हौ ।
है परिनाम भलो तुलसीको सरनागत-भय भानि हौ ॥४॥

२२

मोहि मूढ मन बहुत बिगोयो ।
याके लिये सुनहु करुनामय,
मैं जग जनमि-जनमि दुख रोयो ॥१॥

सीतल मधुर पियूष सहज सुख,
निकटहि रहत दूर जन खोयो ।
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस,
बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ॥२॥
करम-कीच जिय जानि, सानि चित,
चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ,
फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो ॥३॥
तुलसिदास प्रभु ! कृपा करहु अब,
मैं निज दोष कछू नहिं गोयो ।
डासत ही गइ बीति निसा सब,
कबहुँ न नाथ ! नींद भरि सोयो ॥४॥

मानस-रूपक

चौपाई

सम्भुप्रसाद सुमति हियँ हुलसी। राम-चरित-मानस कवि तुलसी
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद-पुरान उदधि घन साधू
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करै मल हानी
पेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम-भगत-जन जीवन सोई
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना

दोहा

सुठि सुंदर संबाद वर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

चौपाई

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञाननयन निरखत मन माना
रघुपति-महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा
राम सीय-जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि-बिलास मनोरम
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा

सुकृतपुंज मंजुल अलिमाला। ग्यान-बिराग-बिचार मराला
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा
सुकृति साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल बिहँग समाना
संत-सभा चहुँ दिसि अँवराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया द्रुम लता बिताना
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रस बर बेद बखाना
औरौ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा

दोहा

पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु॥

चौपाई

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुर बर मानस-अधिकारी
अतिखल जे बिषई बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे
आवत एहि सर अति कठिनाई। रामकृपा बिनु आइ न जाई
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्हके बचन बाघ हरि ब्याला
गृहकारज नाना जंजाला। तेइ अति दुर्गम सैल बिसाला
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना

दोहरा

जे श्रद्धा-संवल-रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहँ मानस अगम अति जिनहिं न प्रिय रघुनाथ ।।

चौपाई

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गयहु न मज्जन पाव अभागा
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सरनिंदा करि ताहि बुझावा
सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा विलोकहिं जेही
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महाघोर त्रयताप न जरई
ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के रामचरन भल भाऊ
जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसंग करौ मन लाई
अस मानस मानस-चख चाही। भइ कविबुद्धि विमल अवगाही
भएउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम-प्रमोद-प्रवाहू
चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जलभरिता सो
सरजू नाम सुमंगलमूला। लोक-वेद-मत मंजुल कूला
नदी पुनीत सुमानस-नंदिनि। कलि-मल-त्रिन-तरु-मूल-निकंदिनि

दोहा

श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल ।।

चौपाई

रामभगति सुर सरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई
सानुज राम-समर-जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन

जुग बिच भगति देव-धुनि-धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा
त्रिबिध-ताप-त्रासक तिमुहानी। रामसरूप सिंधु समुहानी
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजनमन पावन करिही
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरितीर तीर बनु बागा
उमा-महेस-बिबाह-बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती
रघुबर - जनम - अनन्द-बधाई। भवँर तरंग मनोहरताई

दोहा

बालचरित चहुँ बंधु के बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारिबिहंग॥

चौपाई

सीय-स्वयंबर-कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका
सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिकसमाज सोह सरि सोई
घोर धार भृगुनाथ-रिसानी। घाट सुबद्ध राम-बर-बानी
सानुज-राम-बिबाह-उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं
रामतिलक-हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी

दोहा

समन अमित उतपात सब भरतचरित जपजाग।
कलि अघ खल-अवगुन-कथन ते जलमल बग काग॥

चौपाई

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी।

५—अधिक उदोत–और भी शोभा पाता है। हार बेलि-बेला के फूलों का हार।

६—साधु–सज्जन। सुमति–अच्छी बुद्धि वाले। सुचि सरल सुभाव–पवित्र और सीधे स्वभाव वाले। नीतिरत–न्याय में लीन, न्यायी। काम...पाव–ये गुण कामदेव में कहाँ है? अर्थात् काम न तो साधु प्रकृति के हैं, न सुशील, न पवित्र और सरल स्वभाव के हैं और न ही न्यायपरायण हैं, वरन् इसके विपरीत गुणों वाले हैं।

७—रामसरूप–राम का रूप, सौन्दर्य। समसरि–बराबरी। भवकूप–ससार रूपी कुआँ। परै भवकूप–संसार रूपी कुएँ में पड़ता है, दु ख का भागी बनेगा।

८—चढ़त दसा–उन्नत दशा में राम की वीरोचित भृकुटी सदा चढ़ी ही रहती हैं जबकि धनुष अन्त में (उतर जात) शिथिल पड़ जाता है, ढीला हो जाता है। करकस–कर्कश, कठोर। कबहूँ– कभी भी। मैं कभी भी नहीं कहूँगा कि राम की भवें कठोर धनुष के समान हैं।

पृष्ठ २—

६—इस छन्द में उस समय का वर्णन है जब कौशिक ऋषि के साथ रामलक्ष्मण जनकपुरी में सीता-स्वयंवर देखने गये थे और जब रामचन्द्र जी स्वयंवर-मंच पर पधारे थे, उस समय उनके अतुल तेज का प्रभाव इस पद में गुसाईं जी ने दर्शाया है। यहाँ राम जी के तेज की तुलना सूर्य से और अन्य राजाओं की चन्द्र से की गई है।

नित्य-नेमकृत—सन्ध्यावन्दनादि दैनिक कर्म करके। अरुणोदय—सूर्योदय से पूर्व की लालिमा का उदय। निसा·· मुख—राजाओं के चन्द्र रूपी मुख। भये मलीन—आभाहीन हो गये जैसे सूर्योदय से चन्द्र प्रकाशहीन हो जाता है।

१०—धनुष की कठोरता और रामचन्द्र जी की सुकुमारता देखकर स्त्रियाँ परस्पर एक-दूसरी से कहती हैं कि भगवान् शिव से ही प्रार्थना करिए कि वे राम जी को ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे वे ऐसे धनुष को तोड़ने में समर्थ हो सकें। कमठपीठ—कछुए की पीठ के समान कठोर। अँदेस—अँदेशा है, शंका है कि राम इसे तोड़ सकेंगे। कहब—कहिए, प्रार्थना कीजिए। तमकि—तमक कर, तेज़ी से। तोरिहि—तोड़ डालें। तमकि ताहि' 'तोरिहि—यह प्रार्थना-वचन है।

११—नृप—राजा जनक। निरास भये—अन्य राजाओं से धनुर्भंग न किये जाने के कारण प्रजा को उदास देख राजा जनक भी उदास हो गये। हरास—सब का दुःख।
निरखत—यह राजा के साथ भी लगाया जा सकता है कि वे प्रजा को उदास देखकर, अथवा प्रजा के साथ भी प्रयुक्त हो सकता है कि वह राजा को उदास देख निराश हो गई।
१२—यह पद विवाहानन्तर अयोध्या लौटने पर अन्तःपुर की स्त्रियाँ नई बहुओं से कहती हैं।

नवला—नई। सरग—आकाश। अनुहारि—समान; यहि अनुहारि—इन मुखों के समान। इस पद का भाव यह है कि महिला-वर्ग इक पर दर्शन करना चाहता है, अतः कहा

गया है कि जैसे आकाश में चन्द्र सभी को दर्शन देता है वैसे ही तुम दर्शन देकर सबको प्रसन्न करो।

१३—एक प्रौढ़ा सखी अन्य सखियों से कहती है। वह राम और सीता के लिए एकान्त बनाना चाहती है अत: उनके उनींदे होने का बहाना बनाकर सखियों को वहाँ से चले जाने का संकेत करती है। उनींदे—नींद से भरे हुए। मिसकरि—बहाना बनाकर।

१४—यह उस समय का प्रसंग है जब राम और लक्ष्मण सीता के साथ वन में चले जा रहे हैं। उस समय मार्ग में पड़ने वाले गाँवों के निवासी उनके अपूर्व सौन्दर्य से मुग्ध हो अपने-अपने भाव प्रकट कर रहे हैं। नर-नारायन—नर और नारायण (लक्ष्मण नर और राम नारायण हैं)। हरि—विष्णु। हर—शिव। मधु—वसंत। मनसिज—कामदेव। विहरत—विहार कर रहे हैं। लोग इस प्रकार इन दोनों के बारे में भिन्न भिन्न कल्पनाएँ कर रहे हैं।

१५—ये वचन केवट के हैं। जाँनि पग साँच—मैं सच कहता हूँ कि आप (नाव पर चढ़ने के लिए) गंगा में पाँव न डालें, पैर न रखें। मेरी नाव में पैर न धरें। निगानाँग—बिल्कुल नंगा, नंगधड़ंग। नया नाच—नित्य नाच नचायेगी। टिप्पणी—यहाँ अहल्या-उद्धार की ओर संकेत है। उस शिला के समान मेरी नाव भी एक स्त्री का रूप धारण कर लेगी तब दूसरी स्त्री को देख मेरी स्त्री मुझे नित्य ही परेशान करती रहेगी। केवट का प्रसंग तुलसी को अत्यन्त प्रिय था। तुलना कीजिए कवितावली 'एहघाटतें' इत्यादि।

१६—गंगा पार करके जब रामचन्द्र जी आगे बढ़ते हैं तो मार्ग में ग्राम-वधूटियाँ रामचन्द्र जी के सौन्दर्य पर मुग्ध होती हैं। उनमें जब एक उनके चरणों की तुलना कमल से करती है तो दूसरी उसके कथन को काटती हुई कहती है।

कंटकित—काँटों से युक्त, कंटीला। पाई—(राम जी के) चरण। यह—ये चरण। दरसाई—दिखाई देते हैं।

१७—यह भी ग्रामस्त्रियों के ही उद्‌गार हैं। हरि—विष्णु। द्वैभुजकर—दो भुजाओं वाला (मनुष्य-रूप में)। दूसर शेष—दूसरा शेष नाग।

१८—जब पंचवटी में शूर्पनखा समझाने बुझाने पर भी नहीं मानी तो श्री रामचन्द्र जी ने उसके नाक और कान काटने का संकेत करके उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया।

बेद—श्रुति, कान। अकास—आकाश, स्वर्ग, नाक।

१६—जिस समय सीता जी के आग्रहवश रामचन्द्र जी स्वर्ण-मृग (मारीच) के पीछे तीर कमान लिये जाते हैं उस समय की उनकी मुद्रा गोस्वामी जी के हृदय में सदा वास करती है।

जटामुकुट—जटाएँ ही मुकुट हैं। कर—हाथों में। सग मरीच—मारीच के साथ अर्थात् उसका पीछा करते हुए। चितवनि—देखने का ढंग। कनखियनु—तिरछी दृष्टि से। राम तिरछी दृष्टि से (मुँह घुमा कर) सीता की ओर देखते भी जाते हैं और मृग के पीछे भी चले जा रहे हैं।

सोखियनु बीच बसति—सीता जी के हृदय में अथवा तुलसी के हृदय में वही चितवन बस रही है।

पृष्ठ ३—

२०—जब राम मारीच को मार कर लौटते हैं तो कुटिया में सीता जी को न देख लक्ष्मण से पूछते हैं।

कनक-सलाक-स्वर्ण की शलाका (सलाई) सोने की सलाई के समान तन्वंगी एवं उज्ज्वल गौरवर्णा।

कला-ससि-शशि-कला, चन्द्र-किरण (के समान हृदय को शीतल करने वाली)। दीप-सिखाउ-दीपक की शिखा (उजाला देने वाली)। तारा-आँख की पुतली (जैसी)।

२१—(इस पद के स्पष्टार्थ के लिए देखिए 'तुलसी के चार-दल, पृष्ठ ४६)

सीय-बरन सम केतिक-केतकी सीता के वर्ण (रंग) के समान वर्ण वाली है। अतिहिय हारि-हृदय से हार मान ली। किहेसि-किया। भँवर कर-भौंरों का। हरवा-हार। हृदय बिदारि-हृदय को फाड़ कर (हार 'हीनता' के दुःख मे ही उसका हृदय विदीर्ण हो गया, यही भाव उचित प्रतीत होता है)।

२२—इस पद में हनुमान जी राम-लक्ष्मण का परिचय सुग्रीव से करा रहे हैं।

इनतें-इनमे, इनके कारण। सित-श्वेत, उज्ज्वल। अति अभिराम-अति सुन्दर।

२३—कुजन-पाल-बुरे लोगों का पालन करने वाला, अथवा वानरों का पालन करने वाला। गुन-वर्जित-निर्गुण। सत्व, रजस्, तमस् तीनों गुणों से अलग। अकुल-कुलरहित,

जिसका अपना कोई विशेष कुल नहीं। अनाथ—स्वामिरहित, असहाय, स्वाधीन। राउर—आपकी। कस—कैसे। गुनगाथ—गुण-वर्णन।

यह पद सुग्रीव जी श्रीरामचन्द्र से कहते हैं।

२४—इस पद में सीता जी अपनी विरह-दशा का वर्णन करती हैं। वे जल जाना चाहती हैं और ज्यों ही विरहाग्नि अधिक प्रज्वलित होती है और सीता जी को यह भान होता है कि अब भस्म हो जाऊँगी तथा दुःख से मुक्त हो जाऊँगी त्यों ही विरह-व्यथा की तीव्रता के कारण दोनों नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है और हृदय के कुछ हलके हो जाने से कुछ शान्ति आ जाती है। इसी दशा का वर्णन सीता जी ने उक्त छन्द में किया है। इस पद में गोस्वामी जी ने कितना स्वाभाविक एवं प्राकृतिक चित्रण किया है! अधिकाई—तेज़ होती है। बैरिनि—शत्रु, क्योंकि ये आँसू बहाकर उस विरह-अग्नि को कुछ समय के लिए शान्त कर देती हैं, फलतः शत्रु का सा काम करती हैं।

२५—इस पद की प्रथम पंक्ति त्रिजटा की कही हुई प्रतीत होती है। विरह-दशा में सीता जी के मुँह से जैसे अकस्मात् ये वचन निकल आये हों, "धूप कितनी तेज़ है और कष्टदायक है।" इस पर त्रिजटा ने प्रथम पंक्ति द्वारा सीता को बतलाया कि तुम भ्रम में हो। यह तो रात है, चांदनी फैल रही है, धूप नहीं है। दूसरी पंक्ति में सीता जी का उत्तर है।

हहरु न—भ्रम में न पड़ो। उजियरिया—चांदनी। घाम—धूप

पृष्ठ ३—

२०—जब राम मारीच को मार कर लौटते हैं तो कुटिया में सीता जी को न देख लषमण से पूछते हैं।

कनक-सलाक—स्वर्ण की शलाका (सलाई) सोने की सलाई के समान तन्वंगी एवं उज्ज्वल गौरवर्णा।

कला-ससि—शशि कला, चन्द्र-किरण (के समान हृदय को शीतल करने वाली)। दीप-सिखाउ—दीपक की शिखा (उजाला देने वाली)। तारा—आँख की पुतली (जैसी)।

२१—(इस पद के स्पष्टार्थ के लिए देखिए 'तुलसी के चार-दल, पृष्ठ ४६)

सीय-बरन सम केतिक—केतकी सीता के वर्ण (रंग) के समान वर्ण वाली है। अतिहिय हारि—हृदय से हार मान की। किहेसि—किया। भँवर कर—भौंरो का। हरवा—हार। हृदय विदारि—हृदय को फाड़ कर (हार 'हीनता' के दुःख से ही उसका हृदय विदीर्ण हो गया, यही भाव उचित प्रतीत होता है)।

२२—इस पद में हनुमान जी राम-लषमण का परिचय सुग्रीव से करा रहे हैं।

इनतें—इनसे, इनके कारण। सित—श्वेत, उज्ज्वल। अति अभिराम—अति सुन्दर।

२३—कुजन-पाल—बुरे लोगों का पालन करने वाला, अथवा वानरों का पालन करने वाला। गुन-वर्जित—निर्गुण। सत्व, रजस्, तमस् तीनों गुणों से अलग। अकुल—कुलरहित,

जिसका अपना कोई विशेष कुल नहीं। अनाथ—स्वामिरहित, असहाय, स्वाधीन। राउर—आपकी। कस—कैसे। गुनगाथ—गुण-वर्णन।

यह पद सुग्रीव जी श्रीरामचन्द्र से कहते हैं।

२४—इस पद में सीता जी अपनी विरह-दशा का वर्णन करती हैं। वे जल जाना चाहती हैं और ज्यों ही विरहाग्नि अधिक प्रज्वलित होती है और सीता जी को यह भान होता है कि अब भस्म हो जाऊँगी तथा दुःख से मुक्त हो जाऊँगी त्यों ही विरह-व्यथा की तीव्रता के कारण दोनों नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है और हृदय के कुछ हलके हो जाने से कुछ शान्ति आ जाती है। इसी दशा का वर्णन सीता जी ने उक्त छन्द में किया है। इस पद में गोस्वामी जी ने कितना स्वाभाविक एवं प्राकृतिक चित्रण किया है! अधिकाई—तेज़ होती है। वैरिनि—शत्रु; क्योंकि ये आँसू बहाकर उस विरह-अग्नि को कुछ समय के लिए शान्त कर देती हैं, फलतः शत्रु का सा काम करती हैं।

२५—इस पद की प्रथम पंक्ति त्रिजटा की कही हुई प्रतीत होती है। विरह-दशा मे सीता जी के मुँह से जैसे अकस्मात् ये वचन निकल आये हों, "धूप कितनी तेज़ है और कष्टदायक है।" इस पर त्रिजटा ने प्रथम पंक्ति द्वारा सीता को बतलाया कि तुम भ्रम में हो। यह तो रात है, चाँदनी फैल रही है, धूप नहीं है। दूसरी पंक्ति में सीता जी का उत्तर है।

हरुकु न—भ्रम में न पड़ो। उजियरिया—चाँदनी। घाम—धूप

वाधक–विघ्न डालने वाला। पाप–प्रमादादि दुर्गुण।
३४—सब कहँ–सब से। परिणाम–अंत, फल। जनम जनम–प्रत्येक जन्म में। तुलसी रामपद–अनुराग (राम-भक्ति) को मोक्ष से भी प्रधानता देते हैं। देहु–वरदान दीजिए।
तुलना कीजिये—प्रेम की अनन्यता—दोहा १

प्रेम की अनन्यता

पृष्ठ ५—

दोहा १—चातक का प्रेम तुलसी की दृष्टि में अनन्य भक्ति का प्रतीक है। चातक–पपीहा। घनस्याम–काले मेघ। चातक तुलसीदास–ऐसे राम रूपी काले मेघ के प्रेम में तुलसीदास चातक हैं, अर्थात् जैसा अनन्य प्रेम मेघ के प्रति चातक का होता है वैसा ही श्यामघन राम के प्रति तुलसी का है।
२—घन–मेघ, राम। बरषै–वर्षा करे, कृपा-दृष्टि करें। जौ भरि··उदास–चाहे जन्म-भर उपेक्षा करते रहो (कृपा न करो), न बरसो। तऊ–तो भी। तिहारी–तुम्हारी।
३—इस पद में तुलसी अपना सिद्धान्त बतलाते हैं। उनके मत में तो चातक स्वाति की बूँद को भी नहीं पीता, यह धारणा कि वह स्वाति नक्षत्र की ही बूँद को पीता है। तुलसी के विचार में यह कल्पनामात्र ही है, प्रेमी की आन (प्रतिष्ठा) तो इसी में है कि उसकी प्रेम-पिपासा सदा बढ़ती ही रहे। पानि–जल। बाढ़ती भली–बढ़ती हुई ही अच्छी है। घटें–

(प्यास के) घटने से। घटैगी आनि-आन (प्रतिष्ठा) ही घट जायगी।

४—रसना-जिह्वा। लटी-थक गई, ढीली पड़ गई। तृषा-प्यास से, प्यास के मारे। सूखिगे-सूख गये। प्रेमको-प्रेम का। नूतन-नया। रुचि-सुन्दरता। रंग-प्रेम का रंग, प्रेम-प्रगाढ़ता।

५—चढ़त न-आता ही नहीं। कबहुँ-कभी भी। प्रिय पयोद-प्यारे जलद व मेघ। प्रेम-पयोधि-प्रेम के सागर की। ताते-इस कारण। नाप न जोप-माप-तोल हो ही नहीं सकती, प्रेमसागर अथाह होता है।

६—बरपि-बरस कर। परुप पाहन-कठोर पत्थर, कठोर ओले। टुकटूक-टुकड़े टुकड़े। परी न चाहिए- नहीं पड़नी चाहिए; प्रेमपण निबाहने में (भूल-चूक) नहीं करनी चाहिए। भावार्थ यह है कि कठिन आपत्ति पड़ने पर भी चतुर प्रेमी को प्रेम-निर्वाह में भूल नहीं करनी चाहिए।

७—उपल बरपि-पत्थर (ओले) बरसा कर। गरजत-गरजता है। तरजि-क्रोध दिखला कर। कुलिस-वज्र, बिजली। चितवकि चातक-पपीहा क्या देखता है? दूसरी ओर—(मेघ के अतिरिक्त) अन्य की ओर, यही उसके प्रेम की अनन्यता है।

८—पवि-वज्र, दामिनी-बिजली (वज्र को कड़का कर और बिजली को चमका कर) झरि-झड़ी लगाकर। झकोर-आँधी के झकोले देकर। खरि खीज-अच्छी तरह से क्रोध दिखाता है। रोप न-चातक को क्रोध नहीं आता।

रागहि रीझि–अनुराग में प्रसन्न होकर, उलटे वह उसका प्रेम देखकर और भी रीझ जाता है।

६—मान राखियो–आत्मसम्मान की रक्षा करना। माँगिबो–(प्रिय से) माँगना, अभ्यर्थना करना। पिय नेहु–(आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए और भीख माँगते हुए) प्रिय से नित्य नया प्रेम करना, प्रेम का नित्य नया (ताज़ा) होना। तीनिउ'' फबैं–ऊपर कही हुई तीनों बातें तभी शोभा देती हैं।

चातकमत–चातक के सिद्धान्त का पालन किया जाय।

पृष्ठ ६—

१०—मान ' प्रेम–मान (आत्मसम्मान) और प्रेम दोनों को साथ निबाहना। वक्र''स्वातिहु–स्वाती नक्षत्र की बूँद भी यदि टेढ़ी गिरती है, सीधी चातक की चंचु में आकर नहीं गिरती। निदरि–उसका निरादर करके अर्थात् टेढ़ी बूँद को अस्वीकार करके। निबाहत नेम–नियम का निर्वाह करता है प्रेम के व्रत का ही पालन करता है, किसी दूसरे स्वाती नक्षत्र की बूँद की प्रतीक्षा में 'पिय' 'पिय' की रट लगाये रखता है। चातक का नियम यह है कि वह सदा मुँह ऊपर किये सीधा मेघ की ओर निहारता रहता है, यही उसका मान है यही मर्यादा। न तो चोंच को टेढ़ी करेगा न टेढ़ी बूँद को ग्रहण करेगा। वह ऐसा भिखारी नहीं कि दानी जैसे देवे वैसे ही ग्रहण कर ले। वह तो सच्चा प्रेमी है। अतः पिय से भी अपनी मर्यादा की रक्षा करवाना चाहता है। वह प्रेमी है, भिक्षुक नहीं।

११—चातक माँगनो एक—चातक भी (अपनी कोटि का) एक ही माँगने वाला है। एक ''दानि—मेघ भी एक ही दानी है, उस जैसा भी कोई दूसरा नहीं। देत'' पानि—देने वाला भी इतना देता है कि पृथ्वी के सभी पात्र (सरोवर आदि) भर जाते हैं पर चातक केवल एक ही घूँट लेता है। दानी भी ऐसा कि अपरिमित दान देने वाला है और लेने वाला भी अपनी लगन का निराला ही है—एक घूँट की प्यास है एक ही लेगा, अधिक नहीं।

तुलना कीजिए—दोहा २५

घूटक—घूँट एक, एक घूँट ही। पानि—पानी, जल।

१२—जस—यश, कीर्ति। चातक ही'''माथ—केवल चातक के भाग्य में ही है, वही एक यशस्वी प्रेमी है।

जासु'''नाथ—जिसकी दीनता (दीन वाणी) किसी अन्य स्वामी ने नहीं सुनी; जिसने किसी अन्य स्वामी के आगे आर्त्तनाद करके अपनी प्यास नहीं बुझाई। जिसका स्वामी एकमात्र मेघ ही है, वही देगा तो लेगा अन्यथा प्यासा ही रहेगा।

१३—पपीहे और मेघ की प्रीति वास्तव में (प्रकट में) नये ही (अपूर्व) प्रकार की है (अनूठी है, निराली है)। (संसार में ऐसा देखा जाता है कि) जाचक (भिखारी) जगत् का ऋणी होता है परन्तु (इन दोनों के प्रेम-व्यवहार में) जाचक (पपीहा) दानी (मेघ) को ऋणी (उपकृत) बना लेता है।

कनौड़ो—ऋणी, कृतज्ञ, उपकृत।

१४—नहिं संग्रही—संग्रह (इकट्ठा) भी नहीं करता। नहिं

जाचत—माँगता नहीं, केवल पिउ पिउ पुकारता है। सीस नाइ—सिर झुकाकर, सिर ऊपर को किये हुए ही ऊपर से गिरती हुई बूँद को पीता है, नीचे सिर झुका कर नीचे गिरी बूँद को ग्रहण नहीं करता।

मानी—मान वाले, आत्मसम्मान वाले। माँगनेहि—मँगता को। वारिद—बादल, जल देने वाला।

१५—ज्यायो—जिलाया, जीवित किया। जीवनदायक—पानी देने वाले, प्राणदाता। भयो जाचकहि—उलटा जाचक का ही उपकृत बना, उसका ही कृतज्ञ होना पड़ा। पयद—मेघ।

१६—साँसति—कष्ट सहता है। साधन—साधना करने में, प्रयत्न में। सुखद—सुख देने वाला। फल लाहु—फल का लाभ। चातक' काहु—परन्तु चातक की-सी रीझ (प्रेम में उल्लास) और जलद (मेघ) की सी बूझ (सूझ-बूझ, बुद्धि) किसी-किसी ही बुध (बुद्धिमान्) को मिलती है। कष्ट सहते हुए भी चातक के प्रेम की अनन्यता और प्रसन्नचित्तता निराली है और दाता होते हुए भी कृतज्ञताप्रदर्शन मेघ की गुणज्ञता का परिचायक है।

१७—जीवन दायकहि—जीवनदाता की (मेघ की)। सुरीति—अच्छी रीति, सुन्दर ढंग। जीवन समयँ—जीवनकाल में ही। अलख—जो देखा नहीं जाय, जो जाना नहीं जा सकता। प्रीति प्रतीति—प्रेम और विश्वास।

१८—सब को हित मेह—मेघ सब का हितैषी है, हितकारी है। चातक सनेह—परन्तु मेघ के लिए सहज प्रेम तो एक चातक के ही हृदय में समाया हुआ है। मेघ सब का प्रेमी है—

पर मेघ का प्रेमी तो एकमात्र पपीहा ही है ।

१६—विपुल—बहुत, अनेक । पोखरनि—कच्ची तलैयों के । भुवन दस चारि—चौदह भुवन । चातक नवल—नये (ताज़ा) प्रेम वाला पपीहा । सुजस धवल—धवल कीर्ति से ।

२०—मानस मलिन—मन के मैले (कीड़े साँप आदि को खाने के कारण) उनके मन मैले रहते हैं ।

पृष्ठ ७—

२१—बास—रहने का स्थान (मानसरोवर) । वेष—पंखादि रूप । चलनि—गति, चाल (हंस की चाल प्रसिद्ध है) । मानस—मन (नीरक्षीर-विवेकी) । मंजु—सुन्दर हैं । बिसद—निर्मल, स्वच्छ ।

२२—पोद्दार जी ने इस दोहे का भावार्थ यह किया है—"संसार के लोग (विषयीजन) कहते हैं कि चातक पापी है, क्योंकि मेघ ऊसर तक में बरसता है (परंतु चातक के मुँह में नहीं बरसता) । पर मेघ इससे यह शिक्षा देता है कि प्रेम की परीक्षा कठोरता से नहीं करनी चाहिए (अर्थात् कठोरता में प्रेम नहीं है, ऐसा नहीं मानना चाहिए, कहीं-कहीं कठोरता में ही प्रेम का प्रकाश होता है । चातक पापी नहीं है, महान् प्रेमी है; उसके प्रेम का यश मेघ की कठोरता से बढ़ता है) ।

परुषपन—कठोरता । सिखावन—शिक्षा । एहु—यह । पातकी—पापी ।

२३—मूढ़—मूर्ख । गति—दशा । समुझि—समझो । गूढ़—गभीर, गहरा ।

२४—गरज—प्रयोजन, स्वार्थ । गरज करत—प्रार्थना करते फिरते हैं । उर आनि—हृदय में स्वार्थ लाकर, धारण करके ।

जाचक भो—याचक बना । जानि सुदानि—अच्छा दानी जानकर ।

२५—चरग—बाज़ पक्षी । चँगु गत (बाज़ की) चोंच में पकड़े हुए । नेम 'पीड़—प्रेम के नियम का दुःख है, मरने का नहीं । परबस "नीर—(बाज़ से मारे जाने पर) मेरी हड्डियाँ और पख विवश होकर पृथ्वी पर के जल में पड़ेंगे ।

२६—बध्यो—मार दिया । बधिक—शिकारी ने । पुण्यजल—गंगा के जल में । उलटि" चोंच—उलट कर अपनी चोंच को ऊपर को उठा लिया । प्रेम-पट—प्रेम के वस्त्र पर । मरतहुँ—मरते हुए भी । लगी न खोंच—फटा नहीं ।

२७—अड फोरि—अंडे को फोड़कर । चेटुआ—बच्चा । तुप—अण्डे का छिलका । चगुल—पंजा ।

भावार्थ यह है कि चातक के प्रेम की अनन्यता को यह भी सहनीय नहीं कि उसके बच्चे वाला अंडे का छिलका भी पृथ्वी के नीर में पड़े । अत उसे भी पंजे से पकड़ कर (न कि चोंच से) बाहर निकाल फेंका ।

२८—तात—ऐ प्यारे बेटे । तर्पन—मेरे मरने पर मुझे दिया जाने वाला जलादि अर्घ्य, जलाञ्जलि । बारिधर धार—मेघ की जलधारा, मेघ से बरसते हुए पानी की धारा ।

२९—नारि—नाड़, गर्दन । अरधजल-अर्धजली—मरते हुए आदमी को आधा गंगाजल में और आधा बाहर रखते हैं, इसको 'अर्द्धजल-क्रिया' कहते हैं । इस अवस्था में जिसके प्राण छूटते हैं, उसकी सहज मुक्ति हो जाती है—ऐसा शास्त्रों

में वर्णन है। (श्री पोद्दार)—न मांगेउ'' जल-अर्थात् मुक्ति की भी उपेक्षा दिखला दी, इस तरह वह भी नहीं चाहिए।

२०—चारिउ मास-वर्षाऋतु के चारमास।

२१—जान्यों-मैंने यह समझा है। जोगवत-रक्षा करता है, जोग'''मन-वह स्नेही (चातक) मेघ का मन रखता है। उसका मन रखने के लिए ही वह बारह मास चिल्लाता रहता है।

पृष्ठ ८—

२२—प्रेम-पिआस-प्रेम की ही प्यास। जान-जग-संसार जानता है।

२३—आलबाल मुकुताहलनिहिय-(चातक के) हृदय रूपी मोतियों का थाँवला अथवा क्यारी अर्थात् हृदय रूपी अमूल्य क्यारी। स्नेह-तरु-प्रेमरूपी वृक्ष। हेतु-प्रेम।

भावार्थ—चातक के हृदय रूपी बहुमूल्य (मोतियों के) थाँवले में प्रेमवृक्ष की जड़ लगी है। भगवान् करे कि स्वाति नक्षत्र का जल उसके हृदयस्थित प्रेम के लिए अनुकूल हो जाय, अर्थात् भली भांति सिंचित हो, वह फूले फले।

२४—उष्नकाल-ग्रीष्मऋतु। खिन्न-क्षीण अथवा खिन्न, शिथिल। मगपंथी-मार्ग का पथिक, रास्ता चलने वाला। ऊख-गरम, तप्त। उष्णकाल' ऊख-ग्रीष्मऋतु थी, चातक थक गया था, रास्ते में चला जा रहा था और शरीर तप्त हो रहा था। अन जल सींचे रूख—क्योंकि वे वृक्ष अन्य जल से

(स्वाती नक्षत्र के जल मे नहीं) सींचे हुए थे, अत उसे वृक्षों से बातें करना भी अच्छा न लगा, उनके नीचे छाया में विश्राम करना तो दूर रहा।

२५—छाया तें वरु घाम–(ऐसे वृक्ष की) छाया से धूप अच्छी है। चातक बहुत हैं–चातक के से प्रेम का दम भरने वाले, बगुलाभक्त तो संसार में अनेक हैं। प्रवीन–चतुर, सच्चे प्रेमी।

२६—एकअंग नेह–जिस संसार में एकांगी प्रेम कहते हैं, वह वही प्रेम है जो रात-दिन चातक करता है। चातक का प्रेम ही एकांगी प्रेम कहा जा सकता है। एकांगी प्रेम उसे कहते हैं जिसमे प्रेमी यह नहीं देखता कि उसका प्रिय उससे बदले में प्रेम करता है कि नहीं। वह एकनिष्ठ प्रेम करता ही रहता है। वहि अहार–वह ही उसका आहार—खाना-पीना है अर्थात् वह खाना-पीना सब भूलकर प्रिय की स्मृति से ही जीता रहता है। वहि देह–वही (प्रिय ही) उसका शरीर होता है, अर्थात् अपने शरीर की सुधि भुलाकर प्रिय क शरीर की ही सुध में तल्लीन रहता है।

२७–इस पद में वीणा की ध्वनि के साथ सर्प के अनन्य प्रेम का चित्रण किया गया है। विवि रसना–दो जिह्वाएँ। चक चलनि–चाल टेढ़ी होती है। विष खानि–विष की खान है। जस श्रवननि सुन्यो–अपने यश को (वीणा की मधुर ध्वनि में) कानों स सुनते ही। सीस···आनि–आकर सिर अर्पण कर देता है।

३८—राग-वीणा का मधुर स्वर। व्याध को रूप धरि-शिकारी का रूप धर कर। कुहौ-(कुहना मारना धातु) चाहे मार देवे। कुरंगहि-हरिण को। आयु...राग-राग (संगीत, वीणा का मधुर स्वर) ही चाहे स्वयं व्याध का रूप धर कर मृग को मार डाले। मन मुरे-मन मुड़े, राग की ओर से हिरन का मन हट जावे। प्रेम-पट-प्रेम वस्त्र पर। दाग-धब्बा।

३९—मनि-सर्प की मणि। निज दुति-अपनी द्युति, प्रकाश से। फनिहि ''दिखाइ-चाहे साँप को शिकारी को दिखला देवे; मनि चाहे उसके पकड़े जाने का कारण बन जाय। बिछुरत ''आँधरो-क्या मणि के बिछुड़ते ही साँप अंधा नहीं हो जाता अर्थात् मणि के वियोग को वह सहन कर ही नहीं सकता। तातें-मणि से।

४०—यहाँ कमल के प्रेम का उदाहरण है। बनज बन-कमल बन को। जरत-जलते हुए। तुहिन-पाले से। रवि-सूर्य। दै पीठि-पीठ दिखा कर, मुँह फेर कर। पराउ-भाग जाय। उदय विकस-सूर्य के उदय होने पर खिल उठना। अथवत सकुच-अस्त होने पर कुम्हला जाना। सहज सुभाउ-कमल का यह सहज स्वभाव।

४१—देउ आपने हाथ-अपने हाथ से ही चाहे दे देवे। माहुर घोलि-विष घोल कर। कवि खोरि-कवि को दोष देना।

४२—उरग-साँप, पानी के साँप। कमठ-कछुआ। जल-जीवन-जल-जन्तुओं का। जल गेह-जल ही घर है। साँचि लो-सच्चा।

पृष्ठ ६—

४३—मरि मिटेहु–मर मिटने पर भी। मोरसिखा–मयूर-शिखा नाम की वनस्पति। बिनुमूरि–जड़ के बिना होते भी। पलुहत–पनप उठती है।

४४—प्रीति-प्रीतम–प्रेम और प्रियतम। सुलभ–दोनों ही सस्ते हैं। मीन पुनीतते–पवित्र मछली से।

४५—सब सबहित्तें होई–ये सब कृत्य सबके द्वारा हो जाते हैं, सभी कर लेते हैं। लहै बड़ाई–प्रशंसा पाता है। देवता . होइ–जब देवता इष्टदेव (प्रिय देवता उपास्यदेव) हो जाय।

४६—कुदिन-हित–मित्र वही है जो दुर्दिन (आपत्काल) में प्रेम करे (A friend in need is a friend indeed)। ससि-छवि-हर–चन्द्रमा की कान्ति को हरने वाला। सदन–अपने घर में–अमावस्या को सूर्य और चन्द्र एक-साथ रहते हैं। मित्र–सूर्य को संस्कृत में मित्र भी कहते हैं।

४७—कै–था। सम–बराबर वाले के (स्नेह) प्रेम से कष्ट ही होता है। ज्यों घृत होइ–जैसे घी और शहद बराबर मात्रा में मिलने से महाविष बन जाता है।

राम का विमान द्वारा अयोध्या-प्रस्थान

पृष्ठ १०—

उर रखि–हृदय में रखकर। हर्ष–विजय तथा राम जी के सीता जी तथा लक्ष्मण सहित घर को लौटने का हर्ष। विषाद–उनसे पृथक् हो जाने का दुःख। जूथप–यूथपति, सेनापति।

नयननिमेष निवारि—आँखों का झपकना बंद करके, टकटकी लगाकर।

रामतन—राम जी की ओर।

मन महुँ—मन-ही-मन।

कोलाहल—शोर, जयकार की उच्च ध्वनि। श्री-समेत—सीता-सहित। तापर—उस पर। मेरुसृंग—सुमेरु पर्वत के शिखर पर। घन दामिनी—बिजली सहित मेघ। रुचिर—सुन्दर। अति आतुर—उत्सुकतापूर्वक, शीघ्रता से। त्रिविध बयारी—शीतल मंद सुगन्धित वायु। आसा—दिशाएँ। इहाँ—यहाँ। इन्द्र-जीता—इन्द्रजीत मेघनाद को। मारे—मारे हुए। भारे—भारी-भारी। हते—मारे थे।

पृष्ठ ११—

सुखधाम—सुख के घर। सिव थापेउँ—शिवजी की स्थापना की थी। सपदि—तुरंत ही। कुंभजादि—अगस्त्य आदि। अस्थाना—स्थानों, आश्रमों पर। सन—से। असीसा—आशीर्वाद। फेर—का। चोखा—अच्छी तरह, शीघ्रता से। बहुरि—फिर। कलि-मलहरनि—कलियुग के पापों को दूर कर देने वाली। पुनीता—पवित्र। तीरथपति—तीर्थराज। निरखत—जिसके दर्शन से ही। अघ—पाप। भागा—भाग जाते हैं, दूर हो जाते हैं। पावनी—पवित्र। बेनी—त्रिवेणी। हरनि सोक—शोकहारिणी। हरि…सेनि—श्रीहरि (विष्णु) के परमधाम पहुँचने की सीढ़ी के समान। त्रिविधताप—तीनों प्रकार के सन्तापों। भवरोगहर—सांसारिक व्याधियों को नाश करने वाली।

कृपाल–दयालु राम ने। सजल नयन–हर्षाश्रुपूरित नेत्र। बहुरि–पुनः, फिर। मज्जनु–स्नान। कपिन्ह सहित–वानरों सहित, वानरों को भी दान दिया। विबिधविधि–अनेक प्रकार से। बुझाई–समझा कर। बटुरूप–ब्रह्मचारी का रूप। समाचार लेइ–उनका समाचार लेकर।

पृष्ठ १२—

गवनत भयऊ–चला गया। पहिं–पास। मुनिपूजा कीन्हीं–मुनि ने भगवान् राम की इष्ट बुद्धि से पूजा की। अस्तुति–स्तुति। जुगल–दोनों। बहोरि–पुन, फिर। इहाँ–यहाँ पर। नाव नाव कहँ–नाव कहाँ है, नाव कहाँ है, अथवा प्रत्येक नाव पर से। नाँघि–लाँघ कर। आवा–आ गया। प्रभु आयसु पावा–भगवान् की आज्ञा पा कर। सुरसरी–गंगा। चरनन्हि परी–गंगा जी के चरणों पर पड़ीं, वंदना की। अहिवात–सौभाग्य, सुहाग। अभंगा–अखण्ड रहे। गुहा–निषादराज गुह। परम-सुख-संकुल–परम आनन्द से परिपूर्ण। अवनि–पृथ्वी पर। तन सुधि–शरीर की सुध-बुध। उर लाई–हृदय से लगा लिया।

कृपानिधान–दयानिधि। सुजानराय–ज्ञानवानों में शिरोमणि। रमापति–विष्णु, यहाँ राम। बैठारि–बैठा कर। परमसमीप–अत्यन्त पास। अब कुसल–अब इस समय कुशल है। पद-पंकज–चरण-कमलों को। बिलोकि–दर्शन करके। बिरंचि–ब्रह्मा। संकर–शिव। सेव्य–पूज्य, सेवा किये जाने योग्य। सुखधाम–सुख के गृह। पूरन काम–जिनकी सब इच्छाएँ

पूर्ण हैं। नमामि—नमस्कार करता हूँ। ते—तुम्हें, आपको। सब भांति अधम—जो सब प्रकार से नीच है। भरत ज्यों—भरत के समान। मतिमंद—मंद-बुद्धि। बिसराइयो—भुला दिया। रावनारि—रावण के शत्रु का। पावन—पवित्र कर देने वाला। रति-प्रद—प्रीति देने वाला। कामादिहर—काम वासनाओं को हरने वाला। विग्यानकर—(भगवान् के स्वरूप का) विशेष ज्ञान देने वाला। मुदा—आनन्द-मग्न होकर, प्रसन्न होकर। जे सुजान—जो ज्ञानी, बुद्धिमान्। विभूति—ऐश्वर्य। विवेक—सत् और असत्, भले और बुरे का भेद करने वाली शक्ति, बुद्धि। मलायतन—मल + आयतन—मलों, पापों का घर। नाहिं न—नहीं है। आन—अन्य, दूसरा। अधार—आधार, आश्रय।

कवितावली

१—अवधेस—अवध + ईश, महाराज दशरथ। सकारे—सवेरे। गोद कै—गोदी में करके (लेकर)। लै निकसे—लेकर निकले। हौं—मैं। सोच-विमोचन—शोक से छुटकारा देने वाले। जे न…से—जो उन्हें देखकर मुग्ध नहीं हुए उन्हें धिक्कार है। मनरंजन—मन को आनन्द देने वाले। रंजित अंजन—अंजन (सुरमे) का जल से रंगे हुए। सु-खंजन-जातक से—सुन्दर खंजन पक्षी के बच्चे के समान। समसील—एक

जैसे स्वभाव वाले, समान । उभै—दो । नवनील सरोरुह—नये नीले कमल के समान प्रफुल्लित ।

ससि···कसे—मानों चन्द्र (मुख) में एक से स्वरूप वाले दो नये नील कमल खिले हों ।

२—नूपुर—पायजेब । औ—और । करकंजनि—कमलरूपी हाथों में । मजु बनी—सुन्दर फब रही थी । झलकै—झलक (चमक) रही थी । पुलकैं—पुलकित हो रहे थे । अरविंद सो—कमल के समान । रूप-मरद—रूप (सौन्दर्य) रूपी मकरन्द । लोचनभृंग—नेत्र रूपी भौंरे ।

३—आरि करैं—हठ करते हैं । प्रतिबिंब—अपनी परछाईं । करताल—ताली । मोद भरैं—आनन्द से भर देते हैं । रिसि-आइ—रोष करके । जेहि लागि—जिसके लिए । अरैं—हठ करते हैं । विहरैं—विहार करें, बसें ।

४—पनहीं—जूती । धनुही-सर—छोटा-सा धनुष और तीर । चौहट—चौमुहानी, चौराहा । हिये—(भक्तजनों के) हृदय में । सो—के साथ, से । कहा किये—बेकार है, निष्फल है । फल कौन जिए—जीने से क्या लाभ ।

५—यहाँ रामचन्द्रजी के शिव-धनुष तोड़ने का दृश्य अंकित है । डिगति—डगमगाने लगी । उर्वि गुर्वि—अत्यन्त भारी पृथ्वी । सर्व पर्व्वै—सभी पर्वत । व्याल—साँप, शेषनाग । बधिर—बहरा हो गया । दिग्गयंद—दिग्गज । दसकंठ—रावण । परत मुक्खभर—मुँह के बल गिर पड़ा । हिमभानु—चन्द्रमा । सघटित परस्पर—आपस में टकरा गये । विरंचि—

ब्रह्मा। कोल–सूअर। कमठ–कच्छप। अहि–सर्प, शेष। कलमल्यौ–कुलबुलाने लगे। चंड–प्रचण्ड, अत्यन्त कठोर। दल्यौ–तोड़ा।

६—नगर–जनकपुरी में। निसान वर–श्रेष्ठ निशान बाजे। दुंदुभी–नगाड़ा। गान कै-कै–गान करती हुईं, गाती हुईं। राम-उर–राम के गले में। रूरे-रूप–राम (और सीता के सुन्दर रूप में। रचहीं–अनुरक्त होते हैं।

पन जयो–प्रण, प्रतिज्ञा पूरी हुई। भावतो–मनचाहा, सभी राम को ही विजयी देखना चाहते थे। मोद माचहीं–आनन्द-मग्न हैं। साँवलो किसोर–साँवले किशोरावस्था के राम। गोरी–गौरवर्णवाली सीता जी। सोभा··तोरी–शोभा को देख तृण तोड़ती हैं कि कहीं उनको नज़र न लग जाय। जाँचहीं–याचना करती हैं, भगवान् से प्रार्थना करती हैं।

७—परशुराम जी धनुर्भंग के पश्चात् आकर धनुष तोड़ने वाले को देखना चाहते हैं। समस्त राजमंडल से वे कहते हैं।

अर्भक—बच्चे। पटुधार–तेज़ धार वाला। कराल–भयंकर। कुठार–कुल्हाड़ा। जाको–जिसका अर्थात् मेरा। सोई हौं–वही मैं। बूझत–पूछता हूँ। हौं दलि··ताको–मैं उसके बल को चूर्ण करूँगा।

इतने में लक्ष्मण बोल उठते हैं। तीसरी चौथी पंक्तियों में परशुराम जी उन्हीं के बारे में पूछते हैं।

लघु आनन–छोटा मुँह है। लरिहै–लड़ेगा। करिहै··

साको–अपना नाम करेगा, अर्थात् युद्ध में मुझे हरा कर यश पैदा करेगा।
गरूर गुमान भरो–अभिमान से भरा हुआ। छोटो–बालक। काको–किसका।

८—काल के–राजाओं के लिए जो भयंकर काल (मृत्यु) हैं। फरसा–कुठार। विलोकि सप्रेम–पहले तो उन्हें अत्यन्त प्रेम से देखा। उनके सौन्दर्य पर मुग्ध-से हो गये। महारिसि तें–घोर क्रोध से। आँखि दिखाए–आँखें दिखाने लगे। सुहाए–अच्छे लगे। लायक हे–योग्य थे, यद्यपि पूर्ण से परशुराम समर्थ थे। सुभाय–सरल स्वभाव से।

अयोध्याकांड

१—कीर–सूआ, तोता। कागर–पँख। ज्यों–जिस प्रकार सूआ वसंत में पुराने पख त्याग कर नये पाता है। नृप चीर–राजसी वस्त्र।
कीर ' 'पाई–राजसी वस्त्राभूषण उतार कर राम जी के अंगों ने उस नवल शोभा को प्राप्त किया जो सुग्गा (वसंत में) अपने पुराने पर त्याग कर नये पंख प्राप्त करके पाता है।
सुबन्धु–श्रेष्ठ बन्धु, लषमण। पुनीत प्रिया–पवित्र धर्मपत्नी, सीता जी। मनो ' 'सुहाई–प्रिय-बन्धु तो मानो धर्म का रूप था और पत्नी क्रिया, सुकर्म का। अर्थात् रामचन्द्र मानो धर्म और कर्म को साथ लिये जा रहे हैं। राजिवलोचन–कमलनेत्र। बटाऊ–बटोही, पथिक। नाई–समान। राम ने

पिता के राज्य को इस प्रकार निरपेक्ष होकर छोड़ दिया और वहाँ से वन को चल दिये, जैसे एक पथिक मार्ग में कुछ समय ठहर कर उस स्थान के सब साज-सामान को छोड़कर बिना किसी चिन्ता के आगे चल देता है।

१०—यह पद राम-वन-गमन के समय कौशल्या जी को धैर्य बँधाने के लिए सुमित्रा जी द्वारा कहा गया है।

कीजै कहा—क्या किया जाय। सहावै विधि—भाग्य जो सहन कराना चाहता है, जो भाग्य में लिखा है। रावरो—आपका। भरत···है—कैकेयी को क्या ऐसा करना चाहिए था। जाई—उत्पन्न हुई। राजपूत—राज्याधिकारी पुत्र। देह—चन्द्र का शरीर। सुधागेह—अमृत का घर, अमृतपूर्ण। चाहि···कियो—(विधाता ने) ऐसे सुधाधर चन्द्र को भी मृगांक से कलंकित किया। बाहु बिनु—भुजाहीन। गहियतु है—पकड़ लेता है, ग्रस लेता है।

सारांश यह कि विधि की इच्छा को सहना ही पड़ता है।

११—गंगा-तीर पर खड़े भगवान् राम से केवट का आग्रहपूर्ण निवेदन।

थोरिक—थोड़ी-सी। एहि—इस। कटिलौं—कमर तक। परसै—स्पर्श करते ही। पगधूरि—चरण-रज। तरनी—नाव। तरै—तर जायगी अर्थात् अहल्या के समान स्त्रीरूप धरकर उड़ जायगी। घरनी—स्त्री को। अवलंब—आधार, जीविका का साधन। जिआइहौं—पालूँ पोसूँगा। बरु—चाहे, भले ही।

१२—यह भी केवट का ही कथन है। रावरे—आपके। पायन को दोष न—आपके चरणों का इसमें कोई दोष नहीं। भूरि-

महा प्रभाउ–बहुत ही अधिक प्रभाव है। बन-बाहन–जल का वाहन, नाव। लज रहा है–पानी ने इसे और भी कमज़ोर कर दिया है, पानी में रहने के कारण और भी कोमल हो गई है। पावन–पवित्र करने वाले। पखारि कै–धोकर। श्रर बैन–सुन्दर वचनों को। हँसे हहा है–ठहाका लगा कर हँसे।

१३—यह कथन भी केवट का ही है।

पात भरी–पत्तल भर कर सहरी (सफ़री, मछली) से गुज़र करता हूँ। बारे-बारे–बालक, छोटे-छोटे। याही लागी–इसी पर निर्भर करता है। वित्तहीन–धनहीन, निर्धन। गौतम की घरनी–गौतम ऋषि की स्त्री, अहल्या। ज्यों–की तरह। निपाद–एक नीच जाति। ह्वै कै–होकर। बाद–वाद-विवाद, झगड़ा। रावरी सौं–आपकी शपथ।

१४—करुण शृंगार दर्शनीय है। सीताजी जब वनवास के लिए रामचन्द्र सहित प्रस्थान करती हैं, उस समय का कारुणिक दृश्य तुलसीदास जी ने चित्रित किया है।

पुरतें–अयोध्या नगरी से। निकसी–निकलीं। धरि धीर–धैर्य धारण करके। दए द्वै–रास्ते पर दो-चार क़दम चलीं, अर्थात् थोड़ी दूर तक गईं। भरि भाल–सारे माथे पर। कनी जल की–पसीने की बूँदें। पै–द्वय, दोनों। मधुराधरपुट–सुन्दर ओष्ठपुट। बूझति हैं–पूछती हैं रामजी से। अब केतिक–अभी कितनी दूर। कित है–कहाँ पर। तिय की–सीता जी की। आतुरता–व्याकुलता, घबराहट, श्रमजात विकलता।

पियकी—रामजी की। अतिचारु अँखियाँ— अत्यन्त सुन्दर आँखें। चलीं जल च्वै—विवश आँसू बहाने लगीं। स्वयमेव उन नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो गई।

१५—वन में संयोग-शृंगार का अनूठा चित्र तुलसी की लेखनी ने इस पद में उपस्थित किया है। सीताजी कुछ थक गई हैं, लक्ष्मण जी जल को गये हैं। यही बहाना बना कर वे विश्राम करने की अपनी इच्छा को कितने शिष्ट और सुन्दर रूप में पतिदेव के सामने रखती हैं। पतिदेव का हृदय द्रवित हो जाता है और वे हृदय के पवित्र स्नेह को किस रीति से प्रदर्शित करते हैं, यह दर्शनीय है।

लरिका—लड़का, अभी बालक ही है। परिखौ—प्रतीक्षा कीजिए। घरीक—घड़ी भर के लिए। छाँह ठाढ़े ह्वै—छाया में ठहर कर। पसेउ—पसीना। बयारि करौं—हवा करूँगी। अरु—और। पाँय—आपके चरणों को। पखारिहौं—पोंछ दूँगी। भूभुरि डाढ़े—धूलि से लतपथ व तप्त। लक्ष्मण की प्रतीक्षा के मिस पतिदेव की सेवा करने का सु-अवसर पाना चाहती हैं। स्वयं थक गई हैं, इस भाव को किस प्रकार गुप्त रखा गया है। इस भाव को किस प्रकार सुन्दर और कलापूर्ण रीति से छिपाया गया है। प्रिया स्रम जानिकै—प्रियतमा (सीता जी) थक गई हैं, यह अनुभव करते हुए। बिलंब लौं—देर तक। नाह को—नाथ (पतिदेव) का। नेह लख्यो—स्नेह देखा, अपने प्रति उनके प्रेम को अनुभव किया। पुलको तनु—शरीर रोमाञ्चित हो गया। बारि बाढ़े—नेत्र प्रेमाश्रुओं से प्लावित हो गये।

१६—राम सीता और लक्ष्मण वन में चले जा रहे हैं। कोई ग्रामीण स्त्री उन्हें जाते देखकर प्रेम-विह्वल हो अन्य स्त्री से देखने के लिए कह रही है। तुलसी को राम-वन-गमन का यह दृश्य अत्यन्त प्रिय था और उन्होंने इसका वर्णन बार-बार किया है।

वनिता—स्त्री, सीता जी। बनी—शोभित है। मोहि-सी ह्वै—मेरे जैसी होकर, मेरे समान ध्यान लगा कर, एकाग्र होकर देखने से ही उन यात्रियों के अनुपम सौन्दर्य का अनुभव किया जा सकता है।

मग जोग न—मार्ग (पैदल) चलने योग्य नहीं। कोमल—क्योंकि अत्यन्त मृदुशरीर हैं। क्यों चलिहैं—कैसे चल सकेंगे ? सकु ··छ्वै—इन चरण-कमलों को स्पर्श कर पृथ्वी भी संकोच कर रही है अपनी कठोरता के कारण। मोहन रूप-जिनका सौन्दर्य मुग्ध कर देने वाला है। अनूप—अनुपम, अद्वितीय।

१७—इस पद को भी १६वें पद के संग ही पढ़ा जाना चाहिए।

सलोने—सुन्दर, सलावण्य। सुभाय—स्वाभाविक रूप में ही। मनो ··है—अपने मनोहर सौन्दर्य से काम को भी जीत लिया है। निषंग—तरकस। विधु-बैनी—विधु-वदनी, चन्द्रमुखी। रति को··है—जिसने अपने सौन्दर्य का थोड़ा-सा अंश रति को भी दे दिया है। पायन तौ—पाँव में तो। सकुचात हियो है—मेरा हृदय संकोच करता है, डरता है।

१८—यह भी किसी ग्राम-वधूटी का ही कथन है। उसे वनवास

के कारण का पता हो गया है। मैं जानी—मैं समझती हूँ। महा अजानि—अत्यन्त अज्ञानी, निर्बुद्धि है। पवि पाहन हूतें—वज्र और पत्थर से भी। पाहन पवि से पहले होना चाहिए था। राजहु—राजा (दशरथ) ने भी। काज अकाज—कार्य-अकार्य, भला-बुरा। कह्यो…है—जिन्होंने अपनी स्त्री के कहने की ओर कान दिये अर्थात् उसका कहना मान लिया। बिछुरे… है—बिछुड़ने पर प्रेमी लोग कैसे जीवित रहे। प्रीतम लोग—प्रेमी लोग। आँखिन… लोग—ये तो आँखों में रखने योग्य हैं, इतने कोमल और प्यारे हैं। किमिकै—किस प्रकार।

१६—इस पद में ग्रामवधुएँ सीता जी से रामचन्द्र जी का परिचय पूछती हैं।

उर बाहु बिसाल—जिनका वक्षस्थल चौड़ा और भुजाएँ लंबी हैं। तिरछी सी भौहैं—तिरछी (वक्र) भवें हैं। तून—तूनीर, तरकस। सरासन—धनुष। सुठि सोहैं—भली प्रकार से सुशोभित हैं। चितै…मोहैं—देखते तो तुम्हारी ओर हैं परन्तु मन हमारा मोह लेते हैं; (इन दोनों पंक्तियों में असंगति अलंकार है)। रावरे कोहैं—आपके क्या लगते हैं।

२०—इस पद में जानकी जी के उत्तर का कलात्मक ढंग देखिए।

बैन—वचन। सुधारस-साने—अमृत रस से सने हुए, अमृत-मय। सयानी हैं—ये चतुर स्त्री हैं। दै सैन—संकेत करके, आँखें तिरछी करके, इशारे के द्वारा ही। वहू मुसुकाइ चली—

(समझा कर) कुछ मुस्कराती हुई आगे चल दीं। सबै-सभी स्त्रियाँ। अली-सखियाँ। लोचन-लाहु-लोचनों के लाभ, राम और लक्ष्मण के दर्शन। भानु उदै-सूर्य के उदय होने पर। अनुराग-तड़ाग-प्रेम-सरोवर। मंजुल-सुन्दर। कंज-कली-कमल की कलियाँ। बिगसीं-खिल उठी हों।

२१-ग्राम की स्त्रियाँ सौन्दर्य-मुग्ध हो प्रेम-विह्वल दशा में परस्पर कहती हैं। मधुर आकर्षण-जनित प्रभाव क्या-क्या करने के लिए तैयार कर देता है, इस पद से ज्ञात हो जाता है। सजनी-हे सखी। रजनी रहिहैं-रात को विश्राम करेंगे। कहिहै जग पोच-संसार बुरा कहेगा। हमारे ऐसा करने पर यदि संसारी लोग हमें बुरा भी कहें तो 'न सोच कछू' कोई चिन्ता नहीं। फल' 'लहिहैं-क्योंकि हमारे नेत्र तो अपने होने के फल (लाभ) तो प्राप्त कर लेंगे। पाइहैं-पायेंगे। बतियाँ-बातें जो ये तीनों रात को आपस में करेंगे। कल-मीठे वचन। अति प्रेम पलकैं-अत्यन्त प्रेम के कारण उनकी पलकें लग गईं, मुग्ध हो गईं, बंद हो गईं। पुलकि है-और राम को हृदय में देखकर रोमाञ्च हो आया।

२२-रामचन्द्र जी का शिकार खेलने का दृश्य इस पद में अंकित है। चारिक-चार एक, कुछ। चारु बनाई-सुन्दर ढंग से। पानि-हाथ में। मृगया-शिकार। अलौकिक-अद्भुत, दिव्य चौंकि-चौंक कर। चकैं-चकित होते हैं। चितवत चित दै-ध्यान लगाकर देखते हैं। न ढरौं-न हिलते हैं। न भगैं-न भागते हैं। जिय जानि-दिल में यह समझ कर।

सिलीमुख—तीर । पच—पाँच (पंचशर=कामदेव) रति-नायक—कामदेव ।

२३—इस पद में हास्य-रस के द्वारा रामपगधूलि की महिमा का सुन्दर वर्णन है। बिन्ध्य—विन्ध्याचल । उदासी—संसार से उदासीन। दुखारे—दुःखी हैं। गौतमतिय-तरी—अहल्या का उद्धार हो गया। सुखारे—सुखी, प्रसन्न। सब सिला—पत्थर की सभी शिलाएँ। ह्वै हैं चन्द्रमुखी—तपस्वियों ने मानो ये वचन भगवान् राम से कहे—कि अब सब शिलाएँ चाँद के समान मुखवाली सुन्दर स्त्रियाँ हो जायँगी। परसे—छूने से। पद" कंज—कोमल चरण-कमल। कीन्हीं भली—बहुत अच्छा किया। कानन—वन। पगु धारे—पैर डाला, पधारे। संकेत यह है कि अब तो हम सबको एक-एक स्त्री मिल जायगी।

किष्किन्धाकांड

२४—मति-गति मंद भई—समुद्र-लंघन में उनकी बुद्धि एवं बल दोनों ही असमर्थ हो गये। पवन के पूत—हनुमान् जी। कूदिबे—कूदने में। पलु गो—पल-भर न लगा, तत्काल कूद गये। साहसी ह्वै—साहस करके। सकेलि आइ—सकेलि (खेल खेल में, अनायास ही) आ गये। सहसा—एकाएक। औरन को—दूसरों का, दर्शकों का। फलु—सुख आनन्द। गो—जाता रहा।

रसातल" आयो—महावीर के इस प्रकार पर्वत पर आ

कूदने से वह पृथ्वी में धँसा और नीचे से जल ऊपर निकल आया। कोल–सूअर, वराह। कलमल्यो–व्याकुल हो गया। अहि–शेष। कमठ–कच्छप। बलु गो–बल क्षीण हो गया। चारिहू चरण के–हनुमान् के चारों पैरों के। चपेट–चपत, आघात। चाँपे–दबाने से। चिपिटिगो–चपटा हो गया। उचके–उचकने पर, उछलने से। उचकिगो–उचक गया, उछल आया। अचलु–पर्वत। चारि अँगुल–चार उगली भर।

सुन्दरकांड

२५—इस पद में लंका में हनुमान् जी की अग्नि से प्रज्वलित पूँछ का चित्रण है। एक ही उपमान के अनेक उपमेय दर्शनीय हैं। सन्देह अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।
वालधी–पूँछ। ज्वाल-जाल–ज्वालाओं का समूह। लीलिवे–निगलने के लिए। काल–यमराज ने। रसना–जिह्वा। व्योम-वीथिका–आकाश की गली, आकाश-गंगा में। भूरि–बहुत से। धूमकेतु–धूम्रकेतु तारे, पुच्छल तारे। वीररस–मानवीकरण देखिए। उघारी है–निकाल कर नंगी कर दी है। सुरेस-चाप–इन्द्रधनुष। दामिनी-कलाप–बिजली का समूह। कृसानुसरि–आग की नदी। जातुधान–राक्षस। प्रजारी है–जलायेगा।

२६—लुलुक–अग्नि की लपटें। लुलुकारी देत–दाढ़ें मार कर

रोते हैं। निकेत–गृह, घर। तात–पिता। भामिनी–स्त्री। छोटे–लड़के। छोहरा–छोकरा। भोरे–भोले-भाले। छोरो–छोड़ दो। छेरी–बकरी। सोवै सो–जो सो रहा हो उसे। जातुधानी–रावण की रानियाँ। पिय–हे पति, प्यारे। लागि रे–लगो, छेड़छाड़ करो।

२७—दसकंध–रावण। धरो धरो–इसे पकड़ लो। धाए–दौड़ पड़े। सूल–त्रिशूल। सेल–भाला, बर्छी। पास–पाश, फाँस। परिघ–लोहे का डंडा। सनीर भाजन–जल भरा बर्तन। समिध–यज्ञ की लकड़ी। सौज–सामग्री (नगर की सारी वस्तुएँ मानो यज्ञकुण्ड की समिधाएँ हैं)। लंक–लंका नगर। पुंगीफल–सुपारी। जव–यव, जौ। धान–चावल स्रुवा–लकड़ी का चमचा जिससे घृताहुति अग्नि में डाली जाती है। लँगूल–पूँछ। बलमूल–बलवान्। प्रतिकूल–शत्रु। हवि–हवन का चरु। हाँकि हाँकि–हुंकार करता हुआ। हुनै–हवन कर रहा है।

इस पद में कवि ने यज्ञकुण्ड का सुन्दर सांगरूपक बाँधा है।

२८—गाज्यो–गरजा। गाज ज्यों–बिजली के समान। भाजे–भागे। जातुधान-धारि–राक्षसों का समूह (धारि = सेना, झुंड)। उलदै—उँडेलने लगा। ज्यो न सावनो–जैसे कि सावन (सावन का मेघ) भी नहीं करता। झहराने–शिथिल होकर गिरने लगीं। दहराने–काँपने लगी। बात–वायु। भहराने–भागने लगे। भट–योद्धा। परावनो पर्यो–भगदड़ मच गई। टकनि–धक्कों से। ढकेलि–धकेलते हुए। पेलि–दल-

पूर्वक दूर हटाते हुए। सचिव–मन्त्री। ठेलि–धक्के से आगे फेंकते हुए। अनल–अग्नि। भयावनो–भयानक है। नाथ. बल–हे स्वामिन्, यहाँ बल काम नहीं देगा।

२९—विकराल वेष–भयानक रूप। सिंहनाद–(हनुमान् की) सिंह की सी गर्जना। सविषाद–खिन्न, दु:खी होकर वेग–तेज़ी में। मारुत–वायु को।

प्रताप–तेज में। मारतंड–मार्तण्ड, सूर्य को। करालता–भयंकरता में। कालऊ–काल, यमराज को। बड़ाई–बड़प्पन में। बावनो–बावनावतार भगवान् को भी। (इन सब का कर्ता कपि है)। सयाने–बुद्धिमान्। अबै आवनो–अभी आने वाला है। साहब–स्वामी, मालिक। रोपे राम–राम के रुष्ट हो जाने पर, क्रुद्ध हो जाने पर। वामदेव–शिवजी। विषम–बड़े भयङ्कर। बली–योद्धा, वीर। बादि–व्यर्थ।

३०—जाति हैं परानी–भागी जाती हैं। गति''है–जिनकी चाल हाथी की सी प्रसिद्ध थी। क्योंहूँ लिहै–क्या किसी भी तरह कोई रक्षा कर सकता है! मदोवै–मदोदरी। काहू कान'' न–कुछ भी ध्यान नहीं दिया। केतो–कितना। कालि–कल ही। बापुरो–बेचारा। घालि है–नष्ट-भ्रष्ट करेगा। बलाई–सङ्कट, आपद्।

३१—हार–बुन्देलखण्डी शब्द-वन। मों–मे। लख्यो बिसेषि–विशेष रूप से विचारा। कुल के कुठार–कुल के लिए कुल्हाड़ा-स्वरूप, मेघनाद। पूतऊ–पुत्र ही। अनेरे–निकम्मे, बेकार या अधमी। साँपनि सो खेलैं–साँपों से खेलवाड़

करते हैं, भयंकर काम करते हैं अनिष्टकारी कार्य करना। ऐसे ही, गले मेलै छुराधार सों–छुरे की धार पर अपना गला रख देते हैं, अहितकर काम करते हैं। बिगोवै–दशा बिगाड़ती है। दाढ़ीजार–वह पुरुष जिसकी दाढ़ी जल गई हो, स्त्रियों की एक रोषभरी गाली—दाढ़ीजला।

३२–धीय–बेटी। बार–बाल, केश। बसन उघारे–वस्त्र खुल गये। धूमधुंध अंध–धूएँ की धुंधकार मे अन्धे हो गये। बारे–बालक। बारि-बारि–पानी-पानी। घहरात–चिंघाड़ते हैं। ठेलि-पेलि–धकेलते गिराते हुए। रौंद–पाँव से मसल कर। खौंदि–घायल कर। बिललात–बिलबिलाते हैं। अति अकुलात–अत्यन्त व्याकुल होते हैं। तौंसियत–प्यास से मरे जा रहे हैं। झौंसियत–जल रहे हैं। झारहीं–लपट से।

३३—इस पद में गोस्वामी जी ने एक अति सुन्दर रूपक बाँधा है।

राजरोग–राजयक्ष्मा, क्षयरोग। बिराट उर–विराट पुरुष के हृदय में। बिकल–व्याकुल। सकल सुख-राँक–सभी सुखों से रंक (दरिद्र), अत्यन्त दुखी। उपचार–इलाज, औषधि। हारे–थक गये, निराश हो बैठे। बिसोक–शोकरहित। ओत–आराम, चैन। मनाक–लेश मात्र, थोड़ा-सा। रजाय–आज्ञा। रसायनी–रसायन बनाने वाला वैद्य। समीर-सूनु–पवनपुत्र, हनुमान। सोधि–शोधकर, शुद्ध करके। सरवाक–मिट्टी का कसोरा जिसमें रस शोधा जाता है। बुट–जड़ी। पुटपाक–मुँहबंद पात्र जिसमें रखकर औषध आग में फूँकी जाती है।

लकजातरूप–लंका का सोना। रतन–रत्नादि, मोती आदि। जतन जारि–यत्नपूर्वक जला कर। मृगाक–रस-विशेष, स्वर्ण-भस्म।

३४—सिद्धिपीठि–जहाँ पर मन्त्रसिद्धि की जाती है। जागो है मसान–मसान जगाया है, शव सिद्ध करना, अमावस्या या पूर्णिमा की रात को श्मशानभूमि में जाकर किसी अधजले शव को आधा जल में और आधा बाहर रखकर उसकी छाती पर बैठ कर साहसपूर्ण हो विघ्न-बाधाओं से विचलित न होते हुए पुरश्चरण पूरा कर लेने के कार्य को शव-साधना या श्मशान जगाना कहते हैं। महासाहस–मसान–जगाने का महान् साहस। देवी–इष्टदेवी, साध्या। सियनारिखी–सीता सदृशी, सीता जैसी देवी। अच्छ-धारि–अक्षयकुमार की सेना को। गढ–लंकागढ। भानुकुल-भानु–सूर्यकुल रघुवंश के सूर्य, श्री रामचन्द्र। प्रताप-भानु-भानु–प्रताप रूपी सूर्य के सूर्य, हनुमान्। लोक कोकनद–संसार रूपी कमल। कोक-कपि–चकवे रूपी वानरों को।

लंका-काण्ड

३५—पाहन–पत्थर। भे–हो गये। जनवाहन–जल का वाहन, नाव। बनरा–वानर-सेना। रढ़े–रटने लगे। सैल-सिला–पत्थरों की शिलाएँ। सागर ज्यों–जैसे सागर (जल मे)। बलवारि बढ़े–वे बल रूपी जल से बढ़ने लग गये।

करैं · आयसु—राम की आज्ञा पूरी करते हैं। कौतुक ही—खेल खेल में ही। चतुरंग—गज, अश्व, रथ, पदाति ये सेना के चार अंग होते हैं। चमू—सेना। दलिकै—संहार करके। राढ़—अधम, दुष्ट, कायर। हाड़ गढ़े—हड्डियाँ घड़ डालीं, चूर-चूर कर दीं।

३६—अंगद-प्रतिज्ञा-वर्णन।

रोप्यो—जमा कर रख दिया, स्थापित कर दिया। पैज कै—प्रतिज्ञा करके। विचारि—ध्यान करके। रघुवीर-वल—रामचन्द्र जी की शक्ति। लागे—लगे, उठाने लगे। भट सिमिटि—योद्धा इकट्ठे होकर, समूह बाँध कर। टसकतु है—खिसकता है। न नेकु—ज़रा-सा भी नहीं। धरनि—पृथ्वी। धरनिधर—पर्वत त्रिकूट। धसकत—पृथ्वी में धँसने लगा। धराधर धीर—धैर्यवान् शेषनाग। बालि को—बालि का पुत्र। दबक—दबाने से। दलकति—विदीर्ण होती है, कंपित हो जाती है। उछरि सिंधु—समुद्र उछलता है। मसकतु है—दबने से फट जाता है। घट्ठा परो—गड्ढा पड़ गया था। मंदर को—मन्दराचल का। कमठ ··काम—(समुद्र मन्थन के समय) कच्छप की कठोर पीठ पर मंदराचल की रगड़ से जो गड्ढा पड़ गया था वही (इस समय) काम आया (उसी के कारण कच्छप को इस महान् बोझे के सह लेने में सहारा मिला। पै···तु है—परन्तु उसके कलेजे में पीड़ा होने लग गई।

३७—हनुमान् जी का युद्ध-कौशल-वर्णन।

तीखे–तेज़, वेगवान् । तुरग–घोड़े । कुरंग–हरिण । गुमान–गर्व । तनु ढीले–शिथिल शरीर । गज-से–हाथी के से । केहरि–सिंह । लौं–की भाँति । झपटे-पटके–झपट कर पटक दिये । सलीले–खेल खेल में ही । भूमि परे–पृथ्वी पर पड़ गये । घूमि–चक्कर खा कर । कराहत–पीड़ा से कराहते, चिल्लाते हुए । हाँकि–ललकार कर । हने–मार डाले । हठीले–हठ, धैर्य वाले ।

३८—लक्ष्मण जी का युद्ध-कौशल-वर्णन है ।

सूर–योद्धा (रावण के)। सजोइल– (युद्ध) सामग्री से सुज्जित । साजि–सजाकर । सुसेल–सुन्दर बर्छी व भाला । वगमेल–वाग मिला कर चलना, पंक्ति-बद्ध सवारों का धावा करना । भरी–भरी हुई, पुष्ट । भले हैं–सुन्दर लगते हैं । जिन्हें धाए–जिनके दौड़ने पर । धुकै–धुक धुक करता है । धरनीधर–शेष । धौर-धकानि–धौल-धक्कों से । हले है–हिल जाता है । रन-तीर्थनि–युद्ध रूप तीर्थस्थान में । लाखन-दानि ज्यों–जैसे लाखों रुपयों का दान देने वाला दारिद–दरिद्रों को । दाबि–दाबकर । दले हैं–मार डाले ।

३९—दोनों सेनाओं के योद्धाओं का युद्धभूमि में चित्रण है । मदर–पर्वतों को । गहि–उठा कर । उनए–उमड़ आये हों । उत–उधर, रावण की सेना की ओर से । प्रचंड झुंड–प्रचण्ड योद्धाओं का समूह । झुके–आगे को लपके । सुरदावन–सुरदमनकारी, देवताओं को वश में करने वाले रावण के । बिरदैत–बिरद वाले, उपाधिधारी यशस्वी वीर । बिरुझे–

भिड़ गये । मची उपरी उपरा—चढ़ा-ऊपरी, स्पर्द्धा—प्रतिस्पर्द्धा ।

४०—हनुमान् जी का युद्ध-चित्रण है ।

कतहुँ—कहीं । उपारि—उखाड़ कर । पर सेन—शत्रु-सेना पर । बरक्खत—बरसाते हैं । मर्दि—मसलवा कर । करक्खत—कर्षत, खींचते हैं । चरन-चोट—चरण-प्रहार । चटकन-चकोट—हाथों से नोचना.।

बज्जत—बजती है, आवाज़ होती है । विकट—भयंकर । कटक—सेना, छावनी । बिद्दरत—फाड़ डालते हैं । वारिद्-जिमि—बादल के समान । गज्जत—गरजता है । लपेटत—लपेटता हुआ । अटल—स्थिर, अविचल । कौतुक-करत—खेल कर रहा है ।

४१—वीभत्स रस का उदाहरण ।

ओझरी—उदर, पेट की थैली । सेल्ही—योगियों की माला, गंडा । खपर—खप्पर । कोरिकै—कुरेद कर । झुटुंग—झोंटे वाली, जटाधारी । झुंड—समूह । तीर-तीर—किनारे किनारे पर । समर-सरि—युद्ध की नदी । खोरिकै—स्नान करके । सोनित—रुधिर । सानि—भिगो, भिगोकर । वहोरि—बार-बार । वैताल—एक भूतयोनि । भूतनाथ—शिवजी । हेरि-हेरि—देख देखकर । हाथ‥ कै—एक दूसरे के हाथ में हाथ मिला कर ।

४२—युद्ध-भूमि में रुधिर के छींटों से भरे हुए राम के शरीर का चित्रण । रहे न सरीर—रावण के शरीर में न रह सके । हड़ावरि फूटि—हड्डियों को फोड़ कर बाहर निकल गये ।

गनी—गुना, माना। जूटी—इकट्ठी हो गई। सोनित ''जटे-लहू की बूँदों की छटा से जड़ित सुशोभित। मरकत-सैल-मरकत, नीलमणि के पर्वत पर। बीरबहूटी—लाल रंग का बरसाती कीड़ा जिसे इन्द्रबधू भी कहते हैं। यह उत्प्रेक्षा अत्यन्त उपयुक्त है।

गीतावली

पृष्ठ २७—

१—पौढ़िये—लेटिये। पालने—झूले में। कर-पद-मुख-चख-कमल—हाथ, पैर, मुँह, नेत्र रूपी कमलों को। लसत—सुशोभित। लोचन-भँवर—अपने नेत्र रूपी भौंरों को। भुलावौं-भुलाऊँ। बाल मनि—तुम्हारी बालकेलि के आनन्द रूपी सुन्दर मणि के लिए। किलकनि—किलकारी (हँसी) रूपी खान को। तेउ—उसे, उस मणि को। अनुराग-ताग—प्रेम रूपी धागे में। गुहिबे कहँ—गुहने, पिरोने के लिए। मति-मृगनयनि—बुद्धि रूपी मृगनयनी। भनित—कहते हैं। भली भामिनी-उर—सुन्दर स्त्री के हृदय में। सो—उसे, उस माला को। फुलावौं—प्रफुल्लित कराऊँ। तेहि मिलि—उसके साथ मिलकर।

२—सहज सुहाय—स्वभाव से ही सुन्दर। खंजन—पक्षी का नाम। सकुचत—सकुचा जाते हैं (अपने आपको भगवान् के नयनों के समान न समझे हुए)। सिसु-भूषण—बालकों के योग्य आभूषण। राजत—सुशोभित होते हैं। जनु ' लैन—

मानो भगवान् से शरीर की शोभा पाने के लिए आये हों। मैन–कामदेव। रहि गयो–वहीं रह गया हो। लखि ··बहु–उस घनेरी सुषमा को देखकर। मोद भरे–आनन्द भरे। वदन–मुख। कल–मधुर। बैन–वचन। अनूप–अनुपम। उर-ऐन–उर + अयन, हृदय-मन्दिर में।

३—अवध-बीथिन–अयोध्या की गलियों में। अनुज–छोटे भाई। नवनील नीरद स्याम–नये नीले (जल से भरे हुए) मेघ के समान राम। तरुण–नूतन। अरुन सरोजपद–लाल कमल रूपी चरणों में। बनी–शोभित होती है। कनकमय–स्वर्णमय। पदत्रान–जूती। पीत-पट–पीताम्बर। तून–तरकस। ललित कर–सुन्दर हाथों में। लोचन···फल–नेत्रों के होने के लाभ को प्राप्त करते हैं।

४—राम ··परी–(अहल्या के सिर पर) जैसे ही राम के चरण-कमलों की रज पड़ी। ऋषितिय–ऋषि की पत्नी अहल्या ने। पाहन-तनु–पत्थर का शरीर। प्रबल–भारी। पति-साप···जरी–अपने भारी पाप के कारण पति के असह्य और कठोर शाप रूप तीव्र आग की जलन में जलती हुई। विबुध-बेलि–देवताओं की बेल, कल्पलता। कृपा-सुधा सिंचि–कृपा रूपी अमृत से सींची जाकर। सुखफरनि–सुख रूपी फलों से। फरी–फलित हुई।

वरी–वरण किया। निगम-अगम-मूरति–वह मूर्ति जो वेदों के लिए भी अगम्य है, जिसे वेद भी पूरी तरह नहीं वर्णन कर सके। महेस-मति-जुवती–शिवजी की बुद्धि रूपी युवती

ने। भई जानि नयनपथ—नेत्र-मार्ग (आँखों के सामने) आई जानकर। इकटकतें न टरी—एकटक देखने से विचलित न हुई। प्रेम-प्रमोदभरी—प्रेम और आनन्द से भरकर। बरनति हृदय-मन ही मन बखान करती है। केहि—किस। आरत—आर्त्त, दीन की। आरति—दुःख, आपत्ति।

५—मिथिला में स्त्रियों द्वारा रामछवि-चित्रण।

सुमुखि—सुन्दरी। चितलाइ—ध्यान लगाकर। चितौ—देखो। रचिवे की रुचि—रचना करने की इच्छा करके। सुबिरचि—श्रेष्ठ ब्रह्मा ने। कितौ—कितना। अवलोकत—देखते ही। कह्यो न परत—कहा नहीं जा सकता। जितौ—जितना। साँवर रूप सुधा—श्यामल छवि रूपी अमृत। भरिवे कहँ—भरने के लिए। कल-कलस—सुन्दर कलश, सुपात्र। रितौ—(तुम) खाली कर दो। बोलिबे कारण—बुलाने के लिए ही। ठयो—रचा है, किया है। ठाट—समारोह। भजिहैं—तोड़ेंगे। भूरि-भाग—बड़ा भारी भाग्य।

६—राम जी का दुलहे के रूप में और जानकी जी का दुलहिन के रूप में सखी द्वारा चित्रण। दुलही—दुलहिन। बर-बरन—सुन्दर वर्ण, शोभा। हरन-मन—मनोहर। सुन्दरता ही री—नख से शिख तक सौन्दर्य का निवाह हुआ है। सखि-अवली—सखी-समूह, सखियों का समाज। जीवन-जनम-लहु—जीने का और जन्म लेने का लाभ। लोचन-फल—नेत्रों का फल। इतनोइ—इतना ही। सही—ठीक ठीक, पूरा-पूरा। सुखमा-सुरभि—शोभा रूपी सुरभि-गाय ने। सिंगार छीर—

(सिगार चाहिए) शृंगार रूपी दूध। अमियमय—अमृत-मय। कियोहै—तैयार किया है। मथि सँवारे—(उस दही को) मथ कर माखन रूपी सीता और राम को बनाया है। सकल' महो—समस्त संसार की शोभा मानो मठा (छाछ) है। (सुन्दर उत्प्रेक्षा से युक्त रूपक बाँधा है)।

जोरी—जोड़ी को। सुख-सोभा—(सुख पृथक् होना चाहिए)। देखकर सुख, आनन्द होता है। सोभा-शोभा का कथन नहीं हो सकता। अतुल सोभा—अद्वितीय शोभा। सिला—सीला, अन्न के जो कण खेत काट लेने के अनन्तर खेत में रह जाते हैं। लवनि—लौनी, अन्न का वह भाग जो खेत काटने वाले श्रमिकों को दिया जाता है। सिला ' लही—रति और कामदेव ने तो सीला और लौनी ही पाई है अर्थात् बची-खुची, पड़ी हुई शोभा को ही पाया है।

७—वन के लिए प्रस्थान करते हुए रामचन्द्र जी से माता कौशल्या का कथन है। रहि चालिए—रह जाइये, यहीं ठहर जाइये। तात रत—पिता के वचनों का पालन करने में इस प्रकार तत्पर हो। जननि'' लायक—तेरे लिए माता भी मान्या होनी चाहिए। बानि—आदत, स्वभाव। मरजाद—मर्यादा। राखहु'''की—कि 'भगवान् राम सज्जनों को सुख देने वाले हैं' अपनी इस मर्यादा की रक्षा करो, अर्थात् मेरे जैसी सत्स्वभाव वालों को सुख देकर यहीं रहो। यदि हमें सुख न दोगे तो मर्यादा टूट जायगी। सोक-कूप—शोक के कुएँ में। पुर—समस्त अयोध्या-नगरी। परिहि—गिर जायगी। सुनि ''यक—यह

सदेश सुनकर कि राम चले गये हैं। दूसन–दोष।
हे ब्रह्मा, विधाता। राम जायक–रामचरणों से वियो
करने वाला। कछु सु ' पायक–मानों कुछ तो यह '
पाने का स्वभाव था, अर्थात् माता के करुण वचनों
होना स्वाभाविक था। सुरकाज'''आयक–कुछ य
भी (अश्रुप्रवाह का कारण) था कि यदि देवकार्य (
महार) न किया तो पृथ्वी पर अवतार लेने (आने)
मुझे लगेगा। अश्रुप्रवाह के ये दोनों कारण थे। '
आने का।

८—यह भी माता कौशल्या का ही कथन है।
हौं ''रहिहौं–मैं किस प्रकार घर पर रह सकूँगी (८
वन को चले जाओगे)। ललन–लला, लाल। इहि–इसी
बालक। विनोद–बाल-लीलाएँ, क्रीड़ाएँ। कलवचन
वचन। हौं अनुराग–मैं अनुरक्त, प्रेम में डूब जा
निमिप–निमेष, क्षण। वदन कमल–आप के मुख
बरप-बीते–(चौदह) वर्ष बीतने तक। बलि–मैं
लेती हूँ। कहा लेखे–तो तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम का क
हुआ, अर्थात् इसे प्रेम कैसे कहा जायगा। भावार्थ य
तुम्हारे विछोह मं यदि मैं चौदह वर्ष तक जीती रह
तो यह प्रीति किस काम की, इसे तो प्रीति कहना ही ?
होगा। विकल–व्याकुल। महतारी–माता को। गदग
गला भर आया। नयन जल–आँसू बह निकले। ह
आने के लिए, कि मैं शीघ्र लौट आऊँगा। फिरि फिरि

बारम्बार कहा।

९—बिकल··बियोग—बियोग में व्याकुल। लोग-पुरतिय—(लोग पृथक् होना चाहिए) लोग व्याकुल हैं और नगर की स्त्रियाँ कहती हैं। अली—हे सखी। मनिगण—रत्न, राम लखन और सीता रूपी रत्न। काँच लगि—काच शीशे के लिए, दशरथ वचन पालन काँच के टुकड़ों के समान मूल्य हीन है। भली—अच्छा काम। कुल-कुबेलि—कुल के लिए बुरी बेल, विषलता। दुख फली—जिसे दुःख रूपी विष के फल लगे हैं। वन-जोग—क्या वन के योग्य है? विषम—विकट, भीषण। दलकि—दरक कर। दली—नष्ट हो गई। कुलिस दली—उस दिन तो वज्र की कठोरता भी तड़-तड़ करके टूट कर नष्ट हो गई, अर्थात् वज्र-हृदयों के हृदय भी फट गये, वे भी पिघल कर बह गये।

१०—जोरे—जोड़े हुए। सकुचनि—संकोचवश। प्रभु...तोरे—भगवान् सबको तिनका तोड़ कर (सम्बन्ध-विच्छेद करते हुए) त्याग रहे हैं। तन—शरीर। प्रान ..छोरे—वीर के समान प्राण रूपी कृपाण (तलवार) को निकाले हुए (जैसे वीर कृपाण निकाले मरने के लिए तैयार हो जाते हैं, वैसे ही लक्ष्मण प्राणों को बलिदान करने के लिए प्रस्तुत थे)। मातुसों—माता सुमित्रा से। बनिहै बात··औरे—और किसी भी उपाय से बात नहीं बनेगी, तुम्हारी इच्छापूर्ति नहीं होगी। चरन गहि—(माता सुमित्रा के) चरण पकड़ कर। जोर्चा—माँगी। बहु··रे—माता से अनेक प्रकार निहोरे करते हुए प्रसन्न

विनय अथवा आभार प्रकट करते हुए। सुचि ह्वै हौ–पवित्र हो जाओगे। सही–सच्चा। राम थोरे–राम की समीपता थोड़े पुण्यों का फल नहीं, अर्थात् बहुत पुण्य कार्य करने पर ही रामजी का सान्निध्य मिल सकता है। चकितचित–चकित होने का कारण यह था कि जिस बात की आशा न थी वह अनायास मिल गई। उड्यो ··भोरे–शिकारी के (भोरे) असावधान हो जाने पर जैसे पक्षी उड़ जाता है।

११—मरकत–नीलमणि। कलधौत–सोना। बरन–वर्ण, रंग। मरकत बरन–ये नील मणि और स्वर्ण के समान श्याम और गौर वर्ण के हैं। काम··रन–करोड़ों कामदेवों की शोभा को भी हरने वाले हैं, मात करते हैं। कोऊ–कोई। सुभग–सुन्दर। सुठि सुन्दरि–अत्यन्त सुन्दर। सोभा ··लिए–सारी शोभा लूट ली है, अर्थात् सम्पूर्ण शोभा अब इन्हीं के पास है। चितके चोर–हृदय को हरने वाले, चितचोर। वय–आयु अवस्था। लोचन-जोऊ–आँख भर कर (तृप्त होकर) देख लो। दिन मनि–सूर्यकुल की मणि राम। अनुराग ताग पोऊ–(इन मणियों को) प्रेम के धागे में पिरो लो। यह धन–इस ध्यान को श्रेष्ठ धन जानकर। मानि सघन–भारी लाभ मान कर। कृपिन ज्यों–कंजूस की तरह। हिये··· गोऊ–हृदय के घर में छिपा लो।

१२—ऐन–गृह, घर, आश्रय। निरखु ··नैन–आँखें भर कर देखो, छककर देख लो। हैन–नहीं है। ऋतुनाथ–बसंत। मैन–मदन।

सिंगार-सुखमा-सुप्रेम—शृंगार, सुषमा और सुन्दर प्रेम। मिलि चले—मिलकर चले जा रहे हैं। जगत'' लैन—संसार का चित रूपी धन लेने के लिए, संसार के हृदयों को हरने के लिए। त्रयी—वशीकरण, आकर्षण और मोहिनी। पठई है विधि—विधाता ने भेजी है। दैन—देने के लिए। तरुतर—वृक्ष के नीचे। बिलंबे—ठहर गये। किए''' फै न—किसने (प्रभु को) प्रेम के कारण उपकृत नहीं बना लिया, अर्थात् भगवान् प्रत्येक व्यक्ति के प्रेम का उपकार मानते हैं।

१३—जब भगवान् बहुत दिनों तक लौट कर नहीं आये तो मार्ग के गाँवों की स्त्रियाँ, जिन्होंने उनका दर्शनामृत पान किया था, आपस में बातें करती हैं। एक सखी दूसरी से कहती है। बटाऊ—बटोही, पथिक। पुनि न फिरे—फिर लौट कर नहीं आये। बारक' काऊ—क्या एक बार फिर उन्हें देख सकेंगी। कटि सुहाए—कटि में मुनियों के से वस्त्र और तरकस शोभायमान थे। प्रलंब—अत्यंत लंबी। जेहि जाए—जिन्होंने उन्हें जन्म दिया था। सरद्'''बदन—शरद ऋतु के स्वच्छ चन्द्र के समान मुख वाले। मंजुल'''लोचन—सुन्दर लाल कमल के समान नेत्रों वाले। मनमय मारग—मनोमय (मन के) मार्ग में। कोटि'''मोचन—करोड़ों कामदेवों के गर्व का चूर्ण करने वाले।

१४—सलोने—लावण्य युत, सुन्दर। जानि'' उपही—वे परदेसी जान-पहचान के बिना भी अपने आप से, अपने प्रिय-

जनों से, तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय लगते थे। सुधा विधि—विधाता ने इन्हें अमृत का और स्नेह का भी सार लेकर बनाया है। जैसे भावते—(मन को) जैसे प्यारे लगते हैं। बहुरि हुक—क्या कभी फिर भी देख लेंगी। कहत—यह कहते कहते। सिथिल—शिथिल हो गईं, मुग्धावस्था में हो गईं। प्रयास—परिश्रम। परी सही—(सही, सची) प्रेम में सच्ची सिद्ध हो गईं।

१५—वर्षा-ऋतु में चित्रकूट की शोभा का चित्रण। गोस्वामी जी के प्रकृति-चित्रण का एक सुन्दर उदाहरण।

सब दिन—सभी ऋतुओं में। नीको लागत—सुन्दर लगता है। वर्षा ''प्रवेस—वर्षा ऋतु के आने पर। विशेष अनुरागत—विशेष रूप से मन लालायित होता है। सोभा पावत—ऐसी शोभा पाते हैं। जनु छावत—जैसे अच्छे राजा के देश और नगर में सुप्रसन्न प्रजागण सब तरह के सुखों का अनुभव करते हैं। जलद—मेघ। मृदु घोरत—मधुर गर्जना करते हुए। धातु रँगमगे—(गेरू आदि) धातुओं से कुछ कुछ रँगे हुए। सृंगनि—चित्रकूट पर्वत के शिखरों पर। आदि अभोज—आदि कमल, वह कमल जो विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ और जिससे ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए थे।

सेवित भृंगनि—देवता और मुनिजन रूपी भौंरों से पूजित। सिखर—शिखर। परस—स्पर्श करती हुई। घनघटहि—घन घटा को। बगपाँति—बगुलों की पंक्ति। आदि बराह''' धरनी—आदि वराह मानों सागर में विहार (क्रीड़ाविलास)

करके दाँतों (दसन) पर पृथ्वी को धारण करके उससे बाहिर निकले हों, (पर्वत की उपमा वराह से, बगुलों की दाँतों से और मेघघटा को पृथ्वी से दी गई है)

जलयुत ··सिलनि—जल से गीली स्वच्छ शिलाओं में। झलकत—झलकते हैं। नभ···तरंग—आकाश और घन के प्रतिबिम्बों की तरंगें। जगरचना विचित्र—नाना प्रकार की सृष्टि। विराट अंग अंग—विराट् पुरुष के अंग-प्रत्यंग में। बिलसति—प्रकाशित, प्रतिभासित होती है। भारि भारि—ऊँचे स्थानों से गिरते हुए। भटि···आछे—स्वच्छ जल भर भर कर। सुकृत-सुख—सुकर्मों का सुख। लागे···पाछे—जैसे सत्कर्म और सुख एकमात्र रामभक्ति के ही पीछे लगे हों—सभी सुख व सुकर्म रामभक्ति का परिणाम हैं।

१६—पद १६, १७ और १८ में कौशल्या का विरहवर्णन है। माई—हे सखि! भोर—प्रभात। और सो—और ही प्रकार का, पहले जैसा नहीं। गिरा—वाणी। पति-सदनिन—पति-गृहों से। मोपै—मेरे पास। न आई—जैसे पहले प्रतिदिन आया करती थीं। बिहँसि—हँसकर। मनहु···बिधाता—मानो विधाता मेरे परम सुख को नहीं देख सका, सहन न कर सका, अतः उस सुख से मुझे वंचित कर दिया। इस पद में माता के विरहोन्माद का चित्रण है।

१७—जननी—माता कौशल्या। बान-धनुहियों—राम लक्ष्मण के छोटे-छोटे बान और धनुष। ललित—सुन्दर। प्रथम ज्यों—पहले की तरह। सबारे—प्रातःकाल। जाइ जगावनि—(नित्य

के अभ्यास के कारण, अथवा विरह की पराकाष्ठा से जनित विस्मृति के कारण राम जी को उनके प्रासाद में) जाकर जगाती है । वडी बार भइ—बहुत देरी हो गई है । पहँ—के पास । बोलि—बुलाकर । बन्धु—अन्य भाइयों को । जेंइय जो भावै—जो अच्छा लगे सो खाइये (प्रात का कलेवा)। कबहुँ समुझि—कभी (होश में आकर) समझ कर। रहि "लिखी-सी—चकित होकर चित्र-लिखी-सी रह जाती हैं, मूर्त्तिवत् स्थिर खड़ी हो जाती हैं। वह सिखि-सी—उस समय का वर्णन करने से तो प्रीति सीखी हुई सी ज्ञात होती है; प्रीति सीखने से नहीं होती, वह तो अपने आप स्वाभाविक होती है । सच्चे प्रेम का वर्णन हो ही नहीं सकता और विरह में तो विशेष करके ।

१८—न समुझावै—नहीं समझाता । मन परतीति न आवै—मेरे मन का विश्वास ही नहीं होता । दूसरे पद में इसका कारण बताया है—लग्यो ही सीता-राम, लषमण और सीता मेरे नेत्रों के आगे सदैव लगे रहते हैं, उनकी मूर्त्तियाँ आँखों के सामने से हटती ही नहीं । तदपि उरको—तो भी हृदय की जलन मिटती ही नहीं, उनके मेरे सामने रहते हुए भी विरह-दुःख बना रहता है—यह आश्चर्य की बात है । विपरीता—विरुद्ध, उलटा । दुख न देखे—रामचन्द्र जी के देखने पर (सामने होते हुए) दुःख नहीं रहना चाहिए था और न देखने पर मेरा शरीर नहीं रहना चाहिए । परन्तु न तो दुख नष्ट होता है (अत. राम वास्तव में यहाँ हैं ही

नहीं) और चूँकि मेरा शरीर विद्यमान है अतः राम यहाँ होने चाहिएँ। यह विलक्षण द्विविधा है जिसमें कौशल्या का मन उलझा हुआ है। अतः वे कहती है—करत···लेखे-मेरे प्राण इसी द्विविधा की उलझन में पड़े होने के कारण शरीर मे कूच नहीं कर पाते। पीर—पीड़ा।

१६—भरतजी माता कैकेयी से कहते हैं।

तैं—तूने। क्यों—कैसे। कठोर···रह्यो री—ये वचन कहते समय तुम्हारा कठोर हृदय भला कैसे बना रहा, फट क्यों नहीं गया। दिनकर-बंस—सूर्यवंश। जननी·· लाई—और माता! मेरी माता तुम बनी? क्या कहूँ? सच है विधाता ने किसे दोष नहीं लगाया? अर्थात् सबके साथ कोई-न-कोई कलंक लगाते ही है, सो मेरे साथ तुम्हारा माता होना ही महादोष है अन्यथा और सब कुछ मेरे लिए श्रेष्ठ था। हौं·· है—कि मैं राजमाता होकर सुख पाऊँगी। छत्र—राज-छत्र। कुल···करैगो—कुल के लिए कलंक और पाप का मूल ऐसा मनोरथ तुम्हारे बिना और कौन कर सकता है। ऐहैं—लौट आयेंगे। ईस·· हरिहै—भगवान् मेरे अपयश को भी दूर कर देंगे। तू·· भरिहै—पर तू कैसे अपना जीवन पूरा करेगी।

२०—तातें—इस कारण। दूषन—दोष। प्रगट कियो है—प्रत्यक्ष किया है। मोहू—मुझे। सुखद—सुख देने वाला। सुधानिधि—अमृत की खान, चन्द्र। जरनि · जोए—जिसके दर्शन से जलन मिट जाती है। बिष··बंधु—उसे भी विष और मदिरा का बन्धु कहते हैं (समुद्र-मथन में चन्द्र के साथ

ये भी उत्पन्न हुए थे)। राम सब·· माहीं–यदि राम अन्त-र्यामी या सबके हृदय में रहने वाले न होते। तौ···हीं–तो तेरी इस करतूत को सुन कर मेरी प्रीति का विश्वास कैसे हो सकता था। मंजुल ' सुन्दर। सींचि-सनेह–स्नेह सिंचित। प्रेम पहिचानी–उनके प्रेम को पहचान कर।

२१—जब भरत जी सबको संग लेकर राम की खोज में चित्र-कूट को चल देते हैं, तो पिंजरे में यह शुक से शारिका अपना दुःख प्रकट करती हुई कहती है। गहवर हिये–व्याकुल हृदय से, भरे दिल से। सारो–सारिका, मैना। वीर–भैया। जग अँधियारो लागत–संसार अंधकारपूर्ण लगता है। चेरि–मन्थरा। अयानि–मूर्ख। नृप·· विचारो–राजा ने भले-बुरे का विचार नहीं किया। सोचतु–सोचते हैं। विधि उजारो–विधाता ने बसाकर किसे नहीं उजाड़ा। चलत–उनके जाते समय। करुनाकर के–दयालु राम के। जब सँभारो–जब उन्होंने (जाते समय) नगर और परिवार की सँभाल की। 'सुने न वचन' का कारण 'नगर कोलाहल भारो' है। भावते–प्यारे भाई, शत्रुघ्न। हम···हमारो–पास होते हुए भी हम पिंजरों में पड़े हुए तरस रहे हैं—यही हमारा हत-भाग्य है। खग–शुक। अब–भाई। मौनी रहि–चुप हो रहो। समुझि·· न्यारो–प्रेम-मार्ग को निराला ही समझ कर। गए ते–जो उस समय सँग गये थे। प्रभुहि–राम को। करम-गुन-गारो–कर्मों के गुणों को भी क्षीण कर दिया। गारो–गारना, क्षीण करना। भरत सँवारो–महाराज ने

मरना सुधार लिया। और‥चारो–ओर सब लोग तो प्रेम की केवल चर्चा ही करते हैं, और चारा ही क्या है, और बस चलता ही नहीं।

२२–चित्रकूट की सभा में भरत नम्र निवेदन कर रहे हैं। जानत हौ–हे भगवान्, आप जानते हो। दीन-हित–आप दीनों के हित करने वाले हो। जन की–अपने इस दास की, मेरी। ए–ये सब अवधनिवासी। संतत–सदा। अति–बहुत ही। अनन्य–आपके ही, और किसी के नहीं। आरति–दुःख। परिजन–आत्मीय, कुटुम्बी। मेरो‥फन की–मेरा जीवन तो ऐसा ही जानिये जैसा कि उस सर्प का होता है जिस के फन की मणि खो गई हो। मोहि वन की–मुझे वन में रहने की। मोको‥सोइ–मुझे तो जो भी दोष लगाया जाय, लग सकता है। उतपति–उत्पत्ति, जन्म। तन की–मेरे शरीर की। निजपन की–अपनी मर्यादा (प्रण) की, शरणागत प्रतिपालन करने की मर्यादा की।

२३—इस पद में माता कौशल्या राम के घोड़ों की विरहावस्था का चित्रण कर रही हैं। वे कहती हैं कि हम तो मन कर भी लेवें पर इन्हें कैसे समझाया जावे। यह पद अत्यन्त करुणरसपूर्ण है।

इन्हहिं–इन घोड़ों को। बुझावौं–समझाऊँ। पति को हित–अपने स्वामी राम का प्रेम। हेरि उत–उसी ओर देखकर। बारे ते–बाल्यपन से ही। अंग लगाइ–शरीर से लगा रखा था अर्थात् गहरा प्रेम करते थे। चितवत चौंकि–चौंक कर देखने

लगते हैं। सोचत आए—हृदय में राम की सुधि होते ही सोचने लग जाते हैं अथवा शोक में पड़ जाते हैं। जोरे—जोड़े (राम लक्ष्मण के दोनों)। विरह-बधिक—वियोग रूपी शिकारी। ऐसेहू—इस बुरी तरह से।

२४—यदि किसी को प्रिय की सामान्यरूप से लौटने की आशा न हो, तो वह उसकी अन्य प्यारी वस्तुओं की दुर्दशा बतलाकर उनके लिए ही आने को कहलाता है। इस पद में कौशल्या माता राम के घोड़ों की विरह-व्यथा का बखान कर उनके लिए ही आ जाने की प्रार्थना कर रही है। माता पथिक के द्वारा रामजी से उन्हीं की दशा का सदेश भेजती है। फिरि आवौ—लौट आओ। बहुरो—फिर, दोबारा। पोखि कर-पंकज—कर-कमलों से पोषण करके। क्यों जीवहिं—ये कैसे जियेंगे। निपट—बिल्कुल। सार—सुध। झाँवरे—दुबले। मनहु मारे—मानों कमल हों जिन्हें पाला मार गया हो। अँदेसो—अँदेशा, चिन्ता।

•

अरण्यकांड

पृष्ठ ३६—

२५—रावण द्वारा आहत जटायु जब रामचन्द्र के पहुँचने पर उन्हें सीता की सूचना देकर प्राण त्याग कर रहा है तो रामचन्द्र जी उसे गोदी में लेकर कह रहे हैं। करुणा रस में यह पद भरा है। नयन सलिल—नेत्र-कमलों के प्रेमाश्रुओं से।

अरघ जल–अर्घ्य-दान, जलाञ्जलि, तर्पण करना। खगपतिहिं–जटायु के। मिलहिं वन–इस वन में मिलने पर। मैं पितु जान्यो–मैंने पिता की मृत्यु को भी भुला दिया था (मानों जटायु पितृतुल्य मिल गये)। बड़ो···भान्यो–मेरे एक बड़े पक्ष को तोड़ दिया। तनु राखन–अपने शरीर की रक्षा के लिए, अर्थात् रामजी ने जटायु से कहा, 'यदि चाहो तो मैं तुम्हें जीवित रख सकता हूँ। परमधीर–अत्यन्त धैर्यवान्, जटायु। नहिं डोल्यो–अपने निश्चय से (राम के समक्ष उनके चरणों में प्राण देने से) विचलित नहीं हुआ। समय–इस समय, इस अवसर पर। लगि–के लिए। धोखो लैहौं–धोखा नहीं खाऊँगा, भरमावे में न आऊँगा। मरत–मरते समय। मुनि दुरलभ–मुनियों को भी दुर्लभ है। तुमहिं–ऐसे तुम्हें। पुनि पैहौं–फिर पाऊँगा।

सुन्दरकाण्ड

पृष्ठ ४०—

२६—सीता जी हनुमान् जी से पूछ रही हैं।

कपि–हे हनुमान्। नयन चकोर–नेत्र रूपी चकोरों को। राकाससि–पूर्णिमा का चन्द्र रूपी मुख। मधुप–भ्रमर। मराल–हंस। छवि–शोभा। तहं तहं–यहीं-यहीं, अर्थात भ्रमर के रूप में मेरे नेत्र उनके मुख, नेत्र, कर और चरण रूपी

कमलों में निवास करेंगे, हस के रूप में नाभि-सरोवर में विहार करेंगे, मोर और चातक के रूप में भगवान् के श्यामल शरीर व केशादि की ओर दौड़ेंगे।

विरह् ··पलुहावहिंगे–वियोगाग्नि से मैं लता के समान जल रही हूँ, ऐसी मुझ को कृपादृष्टि रूपी जल से सींच कर कब लहलहाती हुई बनावेंगे।

लोकपाल–दिक्पाल। मनुज–मनुष्य। सब परे बंदि–जिन्हें रावण ने बन्दी बना रखा है। मुकतावहिंगे–छुड़ावेंगे। रैन-दिन–रात-दिन। मोहजनित–मोह से पैदा हुआ। भ्रम–भ्रान्ति (मारीच में स्वर्णमृग की भ्रान्ति)। भेदबुद्धि–भेदभाव (जैसे मैंने लक्ष्मण जी के प्रति दिखाई थी)।

२७—सीता जी के पास से हनुमान जी की विदाई।

चलत–प्रस्थान करते समय। मनु–मन, हृदय। गहवरि आयो–व्याकुल हो गया। पुलक–रोमांचित। चह्यो–चाहा। पिय·· दुरायो–प्रियतम राम के हृदय की दशा (विरह-दुःख से पीड़ित) जान कर संदेश नहीं दिया और अपने असह्य दुःख को हृदय में ही छिपाये रखा। हरीस–हरीश, कपीश, हनुमान्। ग्रीषम ··तायो–जैसे ग्रीष्म ऋतु में (तरनि) सूर्य की तेज़ धूप में तपाई हुई पृथ्वी पर चलता हुआ यात्री व्याकुल होता है। मीचतें–मृत्यु से भी। नीच–हीन, बुरी। अमरता–अमर होना। छलको ·पायो–वहाँ न तो छल न यत्न का स्थान (अवसर) देखकर उन्हें अपना प्रेम (परुष) कठोर प्रतीत होने लगा।

के प्रबोध–समझा कर। मातु प्रीति सों–वात्सल्य-प्रेम से। ह्वै है···भायो–तुम्हारा ही मनचाहा होगा। करुना···गौन–हनुमान् जी ने करुणा, क्रोध, लज्जा और भय से भरे हुए प्रस्थान किया। मौन ही–चुप रहकर बिना मुँह से कुछ कहे। रसना रूखी–जिह्वा रूखी है। ताही···गायो–इसी कारण वह उसका गान कर सकी (यदि हृदय के समान वह भी सरस होती तो वह भी वर्णन करने में असमर्थ हो जाती)।

२८—भगवान् राम से हनुमान् जी द्वारा सीता जी का कुशल-समाचार देना।

जौन–जो, जैसी। जानौं···हौं न–मैं कुछ कुछ जानता हूँ, परन्तु कह नहीं सकता। लोचन···कोन–आँखों के आँसू कंजूस के धन के समान कोनों में ही रहते हैं (अर्थात् नेत्र सदा दुःखाश्रुओं से परिपूर्ण रहते हैं)। 'हा' धुनि···मौन–मौन (चुप्पी) रूपी बड़े शिकारी ने 'हा' ध्वनि रूपी चिड़िया को लाजरूपी पिंजरे में बंद करके हृदय में ही रख छोड़ा है। भावार्थ यह—कि सीता जी के मुख से 'हा' की ध्वनि भी नहीं निकलती, हृदय में ही रहती है, आँखें चुप रहती हैं। बसति–सीता रहती हैं। पुरातन भौन–अपने पुराने निवास। तजि···भजे–छोड़-छोड़-कर भाग गये हैं (सीता जी की विरह-ज्वालाओं से संतप्त होकर, वहाँ ठहर नहीं सकते)।

स्वास···पौन–सीता जी की साँसों (श्वासों) की वायु से भूख में ही भेंट होने पर त्रिविध पवन उस मार्ग पर पैर

नहीं धरता। (शीतल, मद, सुगन्ध वायु उस ओर नहीं जाता, भय है कि सीता जी की विरह-श्वासों की गर्मी से जल न जाय)। धरथो–धरा। मुख''गौन–सीता की दशा मुँह से कही जाने पर (वर्णित होने पर) तो अत्यन्त गौण (छोटी) हो जाती है (अर्थात् उसका वर्णन कठिन है; कहने से उसका महत्त्व कम पड़ जाता है)। आरत'' दौन–आर्त्त-आर्त्ति-दमन, दुखियों के दुःख का दमन करने वाले हो।

लंकाकाण्ड

पृष्ठ ४२—

२६—मेघनाद की शक्ति खाकर मूर्च्छित हुए लक्ष्मण जी को गोदी में लेकर श्रीराम के हृदय के उद्गार। उर लाय लए हैं–हृदय से लगा लिया है।

राजीव-नयन–कमल-नेत्रों में। परिताप–संताप, दुःख। तए हैं–तप्त हैं। ससोक–शोक से भरकर। वचन ' गुथए हैं–प्रीति में गुँथे हुए वचन कहते हैं। सेवक अथए हैं–तुम्हारे अस्त के साथ ही सेवक, मित्र, भक्ति और भ्रातृत्व के समस्त गुण अब अस्त हुआ चाहते हैं, अर्थात् अब ऐसे गुणों वाला अन्य कोई नहीं मिलेगा जिसमें ये सभी गुण एक साथ विद्यमान हों। अथए–अस्त। कीरति करतूति–कीर्ति और कर्मों से। सुकृती सकल–सत्कर्म करने वाले सभी को। जए हैं–जीत लिया। तनु राखि–शरीर को रखकर। लोक–इस लोक

में। अपने…लए हैं—अपना अपयश लिया है। लाज इहाँ लौं—लाज यहाँ तक कि। साँगि—शक्ति-अस्त्र। सीपर—ढाल। सुखाइ गए—सूख गए। पवनसुत विधि—हनुमान् रूपी विधाता। फिरि…हैं—पुनः निर्माण किया है, फिर से नये प्राण भर दिये हैं (संजीवनी बूटी लाकर)।

२०—वही—

विपति बँटावन—दुःख को बँटाने वाली। बन्धु-बाहु—लक्ष्मण की भुजाओं। काको—किसका। मोपर…विधाता—विधाता ने मुझ से मुँह फेर लिया है, विपरीत हो गया है। हौं तज्यो—मुझे त्याग दिया। सो—समान। जैहैं—चले जायँगे। साखामृग—वानर। हौं…संघाती—मैं भी भाई लक्ष्मण का साथ दूँगा, मैं भी प्राण त्याग दूँगा। रही…छाती—मेरा हृदय इसी सोच (चिन्ता) से भरा हुआ है। हिय-हारे—शिथिल हो गये, दिल छोड़ बैठे। औसर—अवसर। प्रचारे—उत्तेजित किया।

२१—लक्ष्मण जी को सुधि होने पर जब उनसे पूछा गया कि क्या अब भी घाव में दर्द हो रहा है तो वे उत्तर देते हैं। हृदय…घौरे—मेरे हृदय में तो केवल घाव ही है, इसकी पीड़ा तो रामजी को हो रही है। पाइ सजीवन—संजीवनी बूटी पाकर, या सेवन करके। जागि—होश में आकर। प्रेम…शरीरै—प्रेम से पुलकित होकर शरीर की सुध भूलकर। कीरै—तोते को। मोहि…कीरै—जैसे तोते से कोई पढ़ाये हुये पाठ के अर्थ (पूछने) की बात करे वैसे तुम लोग मुझ से बार बार क्या पूछते हो।

सोभा ''हीरैं–हीरे की शोभा, उससे होने वाले सुख, लाभ व हानि तो (उसे धारण करने वाले) राजा को ही होती है (हीरे को नहीं), हीरे का संबंध तो केवल उसकी कांति (चमक) तथा मूल्य से ही होता है। धरि धीरैं–धैर्य (धैर्यवान्) भी धैर्य नहीं रख सका, अर्थात् मनुष्य तो क्या स्वय धैर्य का भी धीरज नहीं रहा। क्यों नीरैं–दूध और पानी से भी किस प्रकार दी जाय।

३२—अवधि पूरी होती देख माता राम की सकुशल यात्रा के लिए बैठी बैठी शकुन मना रही है। कौवों को उड़ा उड़ा कर शकुन देखती है। *अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण है।*

ऐहैं–आयेंगे। कहहु फुरि वाता–सच सच कहो। दोनी–दोना भर भर कर। सोने मढ़ैहौं–सोने से चोंच मढ़ा दूँगी। उर लैहौं–हृदय से लगाऊँगी। गनक–ज्योतिषी। बोलाइ–बुलवाकर। मीन पायो–मरती हुई मछली को मानो जल मिल गया हो।

३३—इस पद में कैकेयी के प्रति भरत और रामजी के व्यवहार का *चित्रण किया गया है। दोनों के व्यवहार में कितनी* भिन्नता है। जौलौं–जब तक। तौलौं–तब तक। मुँह भरि–मुँह खोलकर, सीधे मुँह से। मानी तें–रामजी ने अपनी माता कौशल्या से भी कैकेयी को बढ़कर माना। जननि'' गही–(उनके इस व्यवहार पर) माता कौशल्या ने भी हृदय में गाँठ न रखी, उन्होंने भी कोई मनमुटाव न रखा। राम-रुख ''निबही–रामचन्द्र जी के रुख (मन के भाव

और व्यवहार) को देख कर सब का निर्वाह हो गया। जैसे उनका व्यवहार था वैसे ही ये सब करते रहे। लोक''चही (भरत जी ने) न तो लोकमर्यादा न वेदमर्यादा अथवा दोष व गुण की रीति की ओर कभी दिल ही लगाया और न ही आँखों (चख) से देखा (चही) ध्यान ही नहीं दिया। भरत ''सही—ने राम-प्रेम को ही सुन-समझ कर सही (ठीक ठीक, त्रुटि-हीन) रखा, उसकी पूरी-पूरी रक्षा की—भरत ने तो रामचन्द्र के प्रति अपने प्रेम की ही भर-सक रक्षा की, यही भाव है।

विनय-पत्रिका

पृष्ठ ४५—

१—बावरे-हे बावले। भव-नीरनिधि—संसार रूपी सागर। नाम—राम नाम। निज नाव—अपनी नौका है। रिद्धि—वैभव; सिद्धि—साधन, सफलता। साधि—सिद्ध कर ले, प्राप्त कर ले। ग्रसे'''रे—क्योंकि योग, संयम और समाधि लगाना आदि साधनों को कलियुग रूपी बीमारी ने ग्रस रक्खा है। पोच—बुरा। दाहिनो—अनुकूल। बाम—प्रतिकूल। अंत—अन्त में, आखिरकार। जग'''फूलि—यह संसार उस वाटिका बगीची के समान है जो आकाश में फूल रही है अर्थात् उसी के समान मिथ्या है।

धुएँ कैसे धौरहर–धुएँ की ऊँची बुर्जों, अटारियों की भाँति क्षण क्षण में दिखने और मिटने वाले इस जगत् को। परोसो ··कौर–वह उस मूर्ख के सदृश है जो सामने परोसे हुए भोजन को छोड़कर कौर कौर (ग्रास ग्रास) माँगता फिरता है।

२—जौहे–देख। जग-जामिनी–ससार रूपी रात्रि को। देह दामिनी–इस शरीर, घर और सांसारिक स्नेह को बादल में (क्षण भर के लिए चमकने वाली) बिजली के समान। जैसे–की तरह। सोवत–सोते हुए भी। ससृति-संताप–ससार के कष्टादि। बूड्यो 'साँप–तू ऐसे ही इस ससार में डूब रहा है—जैसे जल की भ्रान्ति में पड़ा हुआ हरिण, और तू रस्सी के साँप को खा रहा है (नितान्त भ्रम में पड़ा है)। वेद-बुध–वेद और बुद्धिमान् लोग। बूझि–समझ ले। दोप ' जाहिं–स्वप्न में भासमान सभी दु ख और दोप जागने पर ही दूर होते हैं, जागने पर ही स्वप्न के नाश के साथ कष्ट और दु:ख भी नाश होते हैं। ताया–तपाने वाले। सुचि–शुद्ध। रुचि–प्रीति। सहज–बिना किसी कारण के होने वाली। सुभाय–स्वाभाविक।

इस पद में सासारिकता को निद्रा और ज्ञान को जागरण माना है।

३—मोहजनित–मोह से पैदा हुआ। मल–पाप, मैला। लाग–लगा हुआ है। अभ्यास-निरत–पापों में लीन रहने का अभ्यासी है। अधिक लपटाई–दिन प्रति दिन, प्रत्येक

जन्म में (पापों में) और भी अधिक लिपटता रहता है। विषय···लागे–विषय-भोग मे पड़ा हुआ। वासना-मान-मद–बुरी बुरी इच्छाओं, अहंकार और गर्व में लीन। जीव–जीवात्मा। सहज सुख–स्वाभाविक आनन्द रूपी आत्म-रूप। पर–अन्य के। लाग–लगा हुआ है। नाथ-चरण–स्वामी के (राम के) चरणों को। विसराय–भूल जाने पर। सुद्धि-हेतु–इस मल (पाप) से शुद्ध होने के लिए ही। राम-चरण··पावै–पर राम-चरणों में प्रेम रूपी जल के बिना इस मल का समूल नाश नहीं होता।

४—सुनु–सुन। मन मूढ़–मूर्ख मन। सिखावन–शिक्षा, सीख। समुझ सवेरो–शीघ्र ही समझ ले। बिछुरे···बहुतेरो–शशि (जो भगवान् के मन से उत्पन्न हुआ "मनसा वै चन्द्रः") और रवि (सूर्य) (जो नेत्रों से पैदा हुआ है) अपने अपने स्थान (मन और नयन) से बिछुड़ने पर (रात दिन घूमते हुए) बहुत कष्ट पा रहे हैं। तहँ–वहाँ भी (आकाश में भी) बड़े भारी शत्रु राहु। पुनीता–पवित्रता। सुरसरिता–गंगा जी। तिहुं पुर–त्रिलोकी में। घनेरो–बहुत, घना। तजे चरन–विष्णु भगवान् के चरणों को त्यागने के बाद। बहियो···केरो–उसे बहते ही रहना पड़ता है, विश्राम मिल ही नहीं पाता। श्रुति···निबेरो–इस सिद्धान्त का सन्देह वेदों ने दूर कर दिया है।

५—या मनकी–इस (मेरे) मन की। परिहरि–त्यागकर। सोसकल—सांसारिक अभिभावकों (अथवा छोटे छोटे देवो·

देवताओं) से (प्यासनिवारण की) आशा रखता है। जानि मति घन की—उसे मेघ समझ लेता है। सीतलता—मेघ की ठंडक। वारि—जल। पुनि ''लोचनकी—उलटी (धुआ लगने से) नेत्रों की हानि (आँखों का फूट जाना) होती है। गच-काँच—शीशे के पक्के फर्श में। सेन—बाज़ पक्षी। जड़—मूर्ख। टूटत'''आनन की—(उस छाया-शरीर को दूसरा पक्षी समझ कर) उस पर उतावला होकर टूट पड़ता है अपने मुँह की हानि (चोट, आघात) को भूल कर (शीशे पर झपटने से अपने ही मुँह को चोट लगती है)। जानत'''जनकी—तुम अन्तर्यामी होते हुए मेरी दशा को जानते हो। निजपनकी—शरणागतप्रतिपालकत्व की प्रतिज्ञा की, प्रण की।

६—अबलौं नसैहौं—अब तक तो (मेरी आयु) नष्ट हो गई, परन्तु अब इसे नष्ट नहीं करूँगा—अब इसका उपयोग करूँगा। भवनिसा सिरानी—संसार रूपी रात बीत गई है, (मेरी अज्ञान-रूपी रात समाप्त हो गई)। जागे—अब मैं जाग गया हूँ (मुझे ज्ञान हो गया)। फिरि न डसैहौं—अब फिर बिस्तर नहीं लगाऊँगा (अब फिर मोह-निद्रा में नहीं सोऊँगा)। नाम चिन्तामनि—रामनाम रूपी चिन्तामणि को। उर कर—इसे हृदय रूपी हाथ से अब खिसकने न दूँगा, सदा राम नाम को हृदय में रखूँगा। स्याम कसौटी—भगवान् राम रूपी साफ़ सुन्दर कसौटी (सोना परखने का काला चमकीला पत्थर)।

चित''कसैहौं—चित्त रूपी सोने को कसता रहूँगा ताकि इसमें यदि कोई मल आ जाय तो पता लग जाय। परवस—विषय-वासनाओं के वश में। निज वस—अपने ही वश में, स्वतन्त्र (आत्मज्ञानी) न हँसैहौं—अपनी हँसी नहीं होने दूँगा। पनकै—प्रण करके। मन मधुकर—मन रूपी भौंरे को। बसैहौं—बसाऊँगा।

७—यह पद रहस्यवादी रचना है। समुझि'रहिये—मन ही मन समझकर रह जाना पड़ता है, इस समझने पर भी बखान नहीं कर सकता।

सून्य भीति पर चित्र—यह सृष्टि रूपी चित्र शून्य रूपी भित्ति (दीवाल) पर है। यह अनन्त सृष्टि शून्य में ही स्थित है। रंग नहीं—बिना किसी रंग के ही ये चित्र बनाये गये हैं। तनु बिनु''चित रे—चित्रकार स्रष्टा (ब्रह्मा) निराकार है—यही अद्भुत लीला है। धोये मिटइ न—(साधारणतया चित्र धोने से मिट जाते हैं परन्तु) ये चित्र धोने से भी नहीं मिटते। मरई भीति—(एक और विशेषता यह है कि चित्र को मरने का कोई भय नहीं, वह तो जड़ होता है पर) इस चित्र को मृत्यु का भय लगा रहता है (संसार के सभी प्राणी मृत्यु से भय खाते हैं)। दुख 'हेरे—(साधारण चित्रों की कलात्मकता आनन्द देती है; उनमें दुःख नहीं होता पर) इसकी ओर देखने से ही दुःख होता है। रवि''जाही—यह संसार मृगमरीचिका का जल है जिसमें अत्यन्त भयानक एक मगर (मृत्यु) रहता है जो मुखरहित (दन्तहीन) होते हुए भी

इन समस्त चर और अचर (जड़जंगम) को ग्रस लेता है जो उस जल को पीने जाते हैं (जो कोई इस भ्रामक जल रूपी सुख को पाने का प्रयत्न करता है, मारा ही जाता है)।

कोऊ··सत्य–कोई इस सृष्टि को सत्य कहते हैं (भौतिकवादी)। झूठ कोऊ–कोई इसेझूठा (मिथ्या) कहता है (अध्यात्म-वादी)। जुगुल–दोनों, सत्य और मिथ्या। जुगुल · माने–कोई सत्य और असत्य (सत्य और मिथ्या से मिश्रित) इसको प्रबल मानते हैं। परिहरै–छोड़ देवे। तीनि भ्रम–सत्य, असत्य और सत्यासत्य समझने के तीनों भ्रम। सो पहिचानै–वही आत्म-ज्ञानी है।

८—माधव–हे भगवान् विष्णु। मोहफाँस–मोह का फंदा। बाहिर उपाय–स्नान-ध्यान पूजा-पाठ आदि बाह्य उपाय। अभ्यन्तर ग्रन्थि–भीतर की गाँठ (अज्ञान)। कराह–कड़ाहा। अंतरगत–उसके अन्दर। अनल–अग्नि। कलप सत–सैकड़ों कल्पों तक। नास न पावै– (वह प्रतिबिम्ब) नष्ट नहीं होगा (जब तक घृत और चन्द्र विद्यमान हैं। इसी तरह जब मोह माया रहेगी, यह पुनर्जन्म की फाँसी भी रहेगी)। बस–बसता हुआ। तरु जैसे–वृक्ष को काट देने पर पक्षी नहीं मर सकता। विचारहीन साधन–विवेक रहित उपाय। पावन–पवित्र। पखारे–धोने से, स्नानादि करके। उरग–सर्प। बलमीकि– बाँबी। बिबिध·· मारे–अनेक प्रकार से पूटने पर भी। हरि गुरु करुणा–भगवान् और गुरु की कृपा। बिवेक–सत्-असत्-भेद-बुद्धि।

९—गति-मुक्ति। कीजै-मैं करता हूँ। अर्थ-सांसारिक वस्तुएँ, पदार्थ। अनर्थरूप-अर्थहीन, असत्य हैं। यहि लागे-इन्हीं के लिए। परय-पड़ता हूँ। विषय अनुरागे-वासनाओं में आसक्त। भूतद्रोह-जीवों के प्रति वैर। मोहवश्य-अज्ञानवश होकर। हित-भला। मत्सर-ईर्षा। ग्यान-रिपु-ये सब ज्ञान के शत्रु हैं। रहनि-फँसा रहता हूँ।

सकल जगव्यापी-सारे संसार में व्याप्त हैं-घट-घट-वासी हैं। वेधत ''पापी-जैसे सारहीन (पोले) बाँस में चंदन की सुगन्धि नहीं ठहरती, वैसे ही सारहीन (थोथे, तत्वज्ञान-हीन) मन में यह विचार नहीं आता। भव ग्रसित-संसार रूपी साँप से डसा हुआ मैं। उरग-रिपुगामी-सर्प-शत्रु गरुड़ पर सवारी करने वाले हे विष्णु भगवान्।

१०—सुभाउ-विषयासक्ति की बान। कोउ भल ''जाई-'कोई मुझे भला कहे' 'और कोई मुझे कुछ देवे' इस प्रकार की लालसा मेरे हृदय से जाती ही नहीं—धन-मान की इच्छा बनी रहती है। सूतहिं-सोते हैं, 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति योगिनः'। भग्न''त्रिधिवस-यद्यपि मनुष्य भाग्य-वश भग्नाश है, उसके भाग्य में मनोरथ-पूर्त्ति बदी ही नहीं और वह सुख चाहता है पर दुःख पाता है। चित्रकार '' बनावै-उसकी दशा उस चित्रकार के समान है जो बिना हाथों के होते हुए भी चित्र बनाये बिना ही स्वार्थ (चित्रकारी की इच्छा) की पूर्ति चाहता है। हृषीकेश-इन्द्रियों के स्वामी। सभय-डरा हुए।

११—जो लेखे-यदि संसार मिथ्या है तो इन तीनों तापों का अनुभव कैसे होता है। मृगबारि-मृगमरीचिका के समान यह ससार। भ्रम ते बिसेखे-(यद्यपि यह संसार असत्य है) पर जब तक भ्रम है तब तक विशेष दुःख होंगे ही। बारिधि बूडत-(सुपने में भी) समुद्र में डूबते हुए। जब जागे-जब तक स्वय न जागे, जब तक आत्म-ज्ञान (जागृति) न हो जाय। अनविचार…सदा-यह ससार अज्ञान के कारण ही रमणीक लगता है। व्यवहारी-व्यवहार करने वालों के लिए। सुखकारी-सुख देने वाला है। सब विधि-सब तरह से। जदपि जूठ-यद्यपि यह जूठा (मिथ्या है)। श्रुति गावे-वेद यह कहते हैं।

१२—आरत-पोसु-दीनों के पालने-पोसनेवाले। बेप बचन बिराग-मेरे भेष में और वचनों में तो वैराग्य है। मन कोसु-पर मन पापों और औगुणों का कोष है। पोली-थोथी। ठोसु-पक्के हैं। रोसु-रोष, क्रोध। चहत खरगोसु-(मेरा मन) यश का ऐसे ही इच्छुक है जैसे एक खरगोश गीदड़ की सेवा करके सिंह का यश चाहता हो। रसनहूँ-जिह्वा से। घोसु-घोषित करो, जपो।

दंभहू कलि नाम-कलियुग में दंभ (ढोंग) से भी लिया हुआ राम नाम। कुंभज सोसु-अगस्त्य ऋषि के समान चिन्ता रूपी सागर को सुखा देता है।

१३—करनी अपार-करना अति कठिन है। सफरी-छोटी मछली। सर्करा-शक्कर। बिलगावै-अलग कर सकता है।

पिपीलिका–चींटी। सकल दृश्य–सम्पूर्ण दृश्यमान संसार को। उदर मेलि–उदर में रखकर (ब्रह्म में माया को समेट कर)। निद्रा तजि–निद्रा को छोड़कर। द्वैत-वियोगी–द्वैत-भाव से नितान्त मुक्त। तहँ नाहीं–योगी की इस दशा में। यहि दसाहीन–इस दशा को पाये बिना।

१४—रति–अनुरक्ति, प्रेम। निसोति–बेमिलावट, शुद्ध, खालिस। भाव बढ़ाए–भाव, प्रेम को बढ़ाकर। खलाए–खाली, पिचके हुए। लोलुप–लालची। आसके–आशा के। नहिं–मुझमें नहीं।

१५—कबहुँक''रहौंगो–मैं कब इस प्रकार के आचरण से रह सकूँगा। गहौंगो–ग्रहण करूँगा। क्रम-धर्म। नेम–नियम। परुष–कठोर। तेहि पावक न दहौंगो–उन (वचनों की आग से न जलूँगा (कहने वाले पर क्रोध न करूँगा)। सम–सम बुद्धि। देह-जनित–शरीर से उत्पन्न। यहि''रहि–इस मार्ग पर चलकर।

१६—अंगहीन–साधन रहित। घर घरनि–घर घर में। जगदीश–जगत् के ईश (स्वामी)। खगराज तजि–गरुड़ को छोड़कर, पैदल। दोस-कोस–दोषों के खजाने को। तोसे–तेरे जैसा। माय जायो को–किस माता ने जाया है। प्रभुकी जनैगी–(उद्धार करने में) भगवान की देरी रूपी लाज्जा दोष और दुःखों को ही उत्पन्न करेगी।

१७—तिनहिं मिले–इन सब से मिलने पर। फिरे''फेरे–

यह मन तुम्हारे फेरने से ही फिरेगा (सत्पथ पर आ सकेगा)। निलय–घर। टेरे–पुकार पुकार कर। हरि प्रेरें–हे भगवान्, क्या यह तुम्हारी प्रेरणा से ही है? पियूष–अमृत। हिम–बरफ, शीतल। बिनु बेरें–बेड़े के बिना भी। बागुरौ–फंदा, जाल।

१८—नीच–हे नीच। बिगोयो–नष्ट कर दिया। बरन–चारों वर्ण। पैयत–मिलते हैं। सुनियत–सुनते हैं। निरबान–मोक्ष। बिधान–रीतियाँ।

१९—अवसर–समय (मानव देह और आयु)। ही ते–हृदय से। हम-हम–अहंकार। रीते–खाली, सब कुछ यहीं छोड़कर। जागु जड़–हे जड़, मूर्ख, जाग, चेत जा। बुझै घी ते–विषय-वासना की अग्नि कभी बहुत घी डालने से बुझेगी?

२०—ऐसी·· रीति–और कौन-से स्वामी की ऐसी रीति है। बिरद हेतु–केवल विरुद (प्रशंसा) के लिए। कालकूट–विष। मातु की गति–माता का पद (स्तनपान करके) अथवा उद्धार करके। जिन्हके–जिन गोपियों के। बानि–स्वभाव। सुकृत–पुण्य। अघ–पाप। पातकरूप–पापमूर्ति।

२१—आपनो· जानिहौ–क्या कभी अपना भी मुझे समझोगे?

बिरद-लाज–शरणागत प्रतिपालक की लाज। प्रनत-प्रेम–शरणागत का प्रेम। दिन-दानि–दीनों को देने वाले। कहि आवत–कहना ही पड़ता है। लौकिक कानि–लोकलाज, कि ऐसे पापी को भी अपना लिया। भानि–तोड़ने वाले।

२२—बिगोयो-बिगाड़ा, नाश किया। जनमि जनमि-अनेक जन्म लेकर। सहज सुख-स्वाभाविक आनन्द (ब्रह्मानन्द)। निकटहि रहत-अत्यन्त समीप, शरीर के भीतर ही (आत्मा में ही) रहता है। दूरि जन खोयो-दूर समझ कर खो दिया। बारि बिलोयो-पानी को बिलोता रहा।

करम-कीच जिय जानि-दिल में यह जानते हुए भी कि कर्म कीचड़ के समान है। सानि चित-अपने चित्त को उसी में लिप्त कर।

मलहि मल धोयो-कीचड़ से ही कीचड़ धोना। अकास निचोयो-शून्य को निचोड़ना चाहता है। गोयो-छिपाया। डासत ही-बिछौना बिछाते बिछाते ही (सुखनिद्रा के लिए साधन बनाते बनाते)। निसा-रात, जीवन।

मानस-रूपक

यह अंश रामचरितमानस से उद्धृत है। इसमें तुलसी ने रामचरितमानस का मानसरोवर के साथ सफल रूपक बाँधा है।

हुलसी-विकसित हुई। अनुहारी-अनुसार। सुमति-सात्विकी बुद्धि। अगाधू-गहरा। थल-स्थान। सगुन-साकार भगवान्। मलहानी-पाप-नाश। पेम-प्रेम। सानि-धान। सुबरन-सुवर्ण। हित-हितकर। मेधा महिगत-बुद्धि रूपी पृथ्वी पर गिरा हुआ। सिमिटि-सिमटकर। सघन सग-

कानों के रास्ते। सुमानस सुथल-सुन्द
रूपी स्थान में। थिराना-स्थिर हो गया
नया जल पृथ्वी पर गिरने से कुछ मलि
धीरे धीरे पुराना होकर साफ़ स्वच्छ हो
सुख देने वाला। विचारि-विचार कर।
सुन्दर । चारि-चारों । संवाद-रामच
चार वक्ताओं द्वारा चार श्रोताओं के प्रति
से पार्वती के प्रति, याज्ञवल्क्य से भर
भुशुंडी से गरुड़ के प्रति और तुलसी सं
सप्तप्रबंध-सात काण्ड जिनमें यह कथ
है। सोपाना-सीढ़ियाँ। ग्यान-ज्ञान,
मनमाना-मन को भाती है। अ
निर्बाध, एकरस। बरनब-वर्णन कर
लहरों का विलास। कमलकुल-
पुष्परज। मकरंद-पुष्परस। सु
पुंज-सत्कर्मों का ढेर। धुनि-ध्व
वक्रोक्ति। कवितगुन-काव्य के गु
जाती-स्वभावोक्ति। अरथ
ये चारों पदार्थ। जलचर-ज
नाम की महिमा का गान करने

अँवराई-अमराई, आम के
निग्रह। लता बिताना-ल
अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अप

स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान। हरिपद-भगवान् के चरण। रस-परम आनन्द। पुलक-रोमाञ्च, कथा के श्रवण और अनुशीलन से जनित आनन्दमय रोमांच। विहारु-विहार, घूमना-फिरना। माली सुमन-शुद्ध मन ही माली है। चारु-सुन्दर। सँभारे-सावधानी से। तेइ-वही। बक-बगुले। संबुक-घोंघा। भेक-मेंढक। सेवार-शैवाल। बलाक-बगुले। तिन्हके-उनके, दुष्टजनों के। ब्याला-साँप। सबल-यात्रा में साथ लेजाई गई भोजन-सामग्री, पाथेय। जुड़ाई-जूड़ी, शीतज्वर। जाड़ बिषम-कड़ी ठंडक, शीत। गएहुँ-वहाँ जाने पर भी। मज्जनु-स्नान। त्रय-ताप-आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक कष्ट। जरई-जलता। भाऊ-भाव, प्रेम। काऊ-कभी। चह-चाहे, चाहता है। अस मानस-इस मानस (रामचरितमानस) को। मानस-चख-मन के नेत्रों से। चाही-देखकर। अवगाही-गोता लगा कर। भरिता-भरी हुई। लोकबेद··कूला-लोकमत और वेदमत इसके दो किनारे हैं। सुमानस नन्दिनि-मानस सरोवर की पुत्री, सरयू नदी। कलिमलत्रिन-कलि के पापरूपी तिनके। तरुमूलनिकंदिनि-वृक्षों को जड़ से उखाड़ देने वाली है। त्रिविध-तीनों प्रकार के। दुहुँ कूल-दोनों तीरों पर बसे (नगर)। अवध-अयोध्या। सुरसरितहि-गंगा। सानुज-लक्ष्मण। देवधुनि-गंगा। सुबिरति-वैराग्य सहित। त्रासक-डराने वाला। निसुद्दानी-शांत सुखदायी। सनुहानी-सामने वाली। भँवर-नदी के भँवर। दनज-दमन।

कानों के रास्ते। सुमानस सुथल–सुन्दर मानस (हृदय) रूपी स्थान में। थिराना–स्थिर हो गया। चिराना–पुराना, नया जल पृथ्वी पर गिरने से कुछ मलिन हो जाता है, वही धीरे धीरे पुराना होकर साफ़ स्वच्छ हो जाता है। सुखद–सुख देने वाला। विचारि–विचार कर। एहि–इस। सुभग–सुन्दर। चारि–चारों। संवाद–रामचरितमानस की कथा चार वक्ताओं द्वारा चार श्रोताओं के प्रति कही गई है—शिव से पार्वती के प्रति, याज्ञवल्क्य से भरद्वाज के प्रति, काकभुशुंडी से गरुड़ के प्रति और तुलसी से उनके मन के प्रति॥ सप्तप्रबंध–सात कायड जिनमें यह कथा विभाजित की गई है। सोपाना–सीढ़ियाँ। ग्यान–ज्ञान, बोध, ज्ञानरूपी नेत्र। मनमाना–मन को भाती है। अगुन–निर्गुण। अबाधा–निर्बाध, एकरस। बरनब–वर्णन करना हो। बीचिबिलास–लहरों का विलास। कमलकुल–कमल-समूह। पराग–पुष्परज। मकरंद–पुष्परस। सुबासा–सुगन्धित। सुकृतपुंज–सत्कर्मों का ढेर। धुनि–ध्वनि, व्यंग्यार्थ। अवरेब–वक्रोक्ति। कवितगुन–काव्य के गुण (माधुर्य, श्रोज, प्रसाद)। जाती–स्वभावोक्ति। अरथ चारी–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चारों पदार्थ। जलचर–जलजन्तु। नामगुनगाना–राम नाम की महिमा का गान करने वाले।

अँबराई–अमराई, आम के वृक्षों का समूह। दम–इन्द्रिय-निग्रह। लता बिताना–लता-मंडप। जम–सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नियम–शौच, सन्तोष, तप,

स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान। हरिपद-भगवान् के चरण। रस-परम आनन्द। पुलक-रोमाञ्च, कथा के श्रवण और अनुशीलन से जनित आनन्दमय रोमांच। बिहारु-विहार, घूमना-फिरना। माली सुमन-शुद्ध मन ही माली है। चारु-सुन्दर। सँभारे-सावधानी से। तेइ-वही। बक-बगुले। संबुक-घोंघा। भेक-मेंढक। सेवार-शैवाल। बलाक-बगुले। तिन्हके-उनके, दुष्टजनों के। ब्याला-साँप। सवल-यात्रा में साथ लेजाई गई भोजन-सामग्री, पाथेय। जुडाई-जूड़ी, शीतज्वर। जाड़ बिषम-कड़ी ठंढक, शीत। गएहुँ-वहाँ जाने पर भी। मज्जनु-स्नान। त्रय-ताप-आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक कष्ट। जरई-जलता। भाऊ-भाव, प्रेम। काऊ-कभी। चह-चाहे, चाहता है। अस मानस-इस मानस (रामचरितमानस) को। मानस-चख-मन के नेत्रों से। चाही-देखकर। अवगाही-गोता लगा कर। भरिता-भरी हुई। लोकबेद···कूला-लोकमत और वेदमत इसके दो किनारे हैं। सुमानस नन्दिनि-मानस सरोवर की पुत्री, सरयू नदी। कलिमलत्रिन-कलि के पापरूपी तिनके। तरुमूलनिकंदिनि-तरुओं को जड़ से उखाड़ देने वाली है। त्रिविध-तीनों प्रकार के। दुहु कूल-दोनों तीरों पर बसे (नगर)। अवध-अयोध्या। सुरसरितहि-गंगा। सानुज-लक्ष्मण। देवधुनि-गंगा। सुविरति-वैराग्य सहित। त्रासक-डराने वाली। तिमुहानी-तीन मुहानाओं। समुहानी-सामने चली। भँदर-नदी के भँवर। धनन-धमद।

वारिविहंग–जल के पक्षी। पटु–चतुराई पूर्ण। सन्निवेका–विवेक-ज्ञान से भरे हुए। अनुकथन–सुनने के बाद की गई चर्चा, बातचीत। सरि–नदी। भृगुनाथ–परशुरामजी। रिसानी–क्रोध। सुबद्ध–अच्छी तरह से बँधे हुए। उमग-सुखद–सुख देने वाली बाढ़। परब जोग–पर्व के समय। जासु फल–जिसके कारण, फलस्वरूप। समन–शमन, शान्त करने वाला। उतपात–उपद्रवों को। जलमल–कीचड़। रूरी–सुन्दर। हिमसैलसुता–पार्वती, हिमालय की पुत्री। उछाहू–उत्सव। रितुराजू–बसन्त। पंथकथा–राम के वन-मार्ग की कथा। खर–तेज़। रारी–युद्ध। पाथा–जल। भायप–भ्रातृत्व। लघुता–हल्कापन। सोषक–सुखाने वाला। तोषक तोषा–सन्तोष को भी सन्तुष्ट करने वाला। दुरित–पाप। मानस–हृदय, मन। बिगोए–बिगाड़े गये, नाश किये गये। रवि वारी–मृगमरीचिका। गनि–जानकर, समझकर।